स्वराज का अर्थ

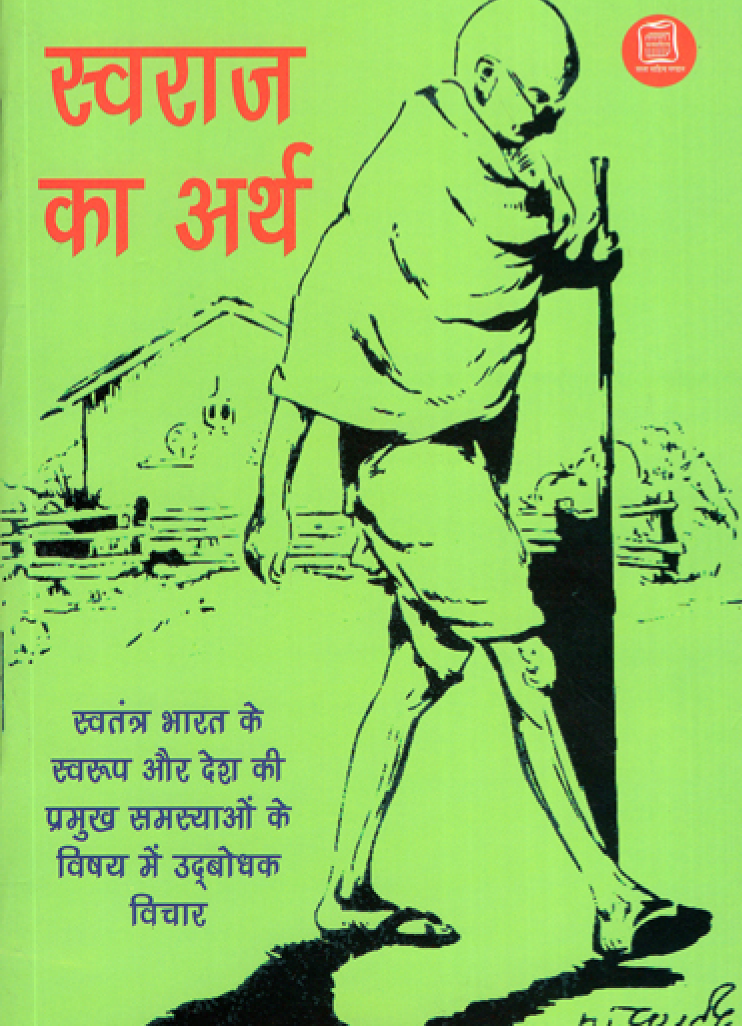

स्वतंत्र भारत के स्वरूप और देश की प्रमुख समस्याओं के विषय में उद्‍बोधक विचार

स्वराज्य का अर्थ

मोहनदास करमचंद गांधी

ISBN 978-81-7309-888-8

प्रकाशक

सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन

एन-77, पहली मंजिल, कनॉट सर्कस, नई दिलली- 110 001

फोन: 23310505, 41523565

Email: sastasahityamandal@gmail.com

Website: www.sastasahityamandal.org

प्रकाशकीय

गांधी के लिए स्वराज्य का अर्थ केवल राजनैतिक सत्ता का परिवर्तन नहीं था, बल्कि विदेशी सत्ता को हटाकर देश में ऐसी व्यवस्था स्थापित करना था, जिसमें छोटे-बड़े, ऊँच-नीव तथा अमीर-ग़रीब की खाइयाँ न रहें और प्रत्येक व्यक्ति को जीवन की आवश्यकताओं की पूर्त्ति के साथ-साथ विकास की पूर्ण सुविधाएँ भी प्राप्त हों।

हमारे देश को स्वतंत्र हुए ४८ साल से अधिक हो गये, लेकिन हम अपने लक्ष्य से आज भी कोसों दूर हैं। गांधीजी के स्वप्न अभी अधूरे पड़े हुए हैं।

इस पुस्तक में हमने गांधीजी के उन चुने हुए विचारों का संग्रह किया है, जो न केवल स्वतंत्र भारत के स्वरूप पर प्रकाश डालते हैं, अपितु आज की ज्वलंत समस्याओं का मार्ग भी सुझाते हैं।

स्वराज्य मिलने के बाद अबतक भारत में अनेक राजनैतिक उतार-चढ़ाव आये हैं और अब यह निश्चय हो गया है कि देश का कल्याण गांधीजी के रास्ते पर चलने से ही होगा।

पाठकों से हमारा अनुरोध है कि वे इस पुस्तक को ध्यानपूर्वक पढ़ें और गांधीजी ने जो अपेक्षा देशवासियों से रक्खी थी, उसे पूरा करें।

- मंत्री

अनुक्रम

१. स्वराज्य का अर्थ

२. मेरे सपनों का भारत

३. भारतीय लोकतंत्र

४. ग्राम पंचायत

५. पंचायत राज

६. ग्राम-सेवक

७. समग्र ग्रामसेवा

८. युवकों का आह्वान

९. राष्ट्र का आरोग्य, स्वच्छता और आहार

१०. गोरक्षा

११. साधन और साध्य

१२. संरक्षकता का सिद्धान्त

१३. बुनियादी शिक्षा

१४. शिक्षा का आश्रमी आदर्श

१५. विद्यार्थियों के लिए अनुशासन के नियम

१६. शासकों के लिए संहिता

१७. अधिकार या कर्त्तव्य ?

१८. बेकारी का सवाल

१९. राष्ट्रभाषा और लिपि

२०. हड़तालें

२१. शराब शैतान की ईजाद

२२. संतति-नियमन

२३. अस्पृश्यता का अभिशाप

२४. गुण्डों की समस्या

२५. भारतीय गवर्नर

२६. अहिंसक अर्थ-व्यवस्था

२७. समान वितरण का रास्ता

२८. भारत की सांस्कृतिक विरासत

२९. आख़िरी वसीयतनामा

१. स्वराज्य का अर्थ

'स्वराज्य' एक पवित्र शब्द है। वह एक वैदिक शब्द है, जिसका अर्थ आत्म-शासन और आत्म-संयम है । अंग्रेज़ी शब्द 'इंडिपेंडेन्स' अक्सर सब प्रकार की मर्यादाओं से मुक्त निरंकुश आज़ादी या स्वच्छंदता का अर्थ देता है। वह अर्थ 'स्वराज्य' शब्द में नहीं है।

(यंग इंडिया, १९-३-१९३१)

'स्वराज्य' से मेरा अभिप्राय है, लोक-सम्मति के अनुसार होने वाल भारतवर्ष का शासन। लोक-सम्मति का निश्चय देश के बालिग लोगों की बड़ी-से-बड़ी तादाद के मत के ज़रिये हो, फिर वे चाहे स्त्रियाँ हों या पुरुष, इसी देश के हों या इस देश में आकर बस गये हों। वे लोग ऐसे हों, जिन्होंने अपने शारीरिक श्रम के द्वारा राज्य की कुछ सेवा की हो और जिन्होंने मतदाताओं की सूची में अपना नाम लिखवा लिया हो । सच्चा स्वराज्य थोड़े लोगों के द्वारा सत्ता प्राप्त कर लेने से नहीं, बल्कि जब सत्ता का दुरुपयोग होता हो तब, सब लोगों के द्वारा उसका प्रतिकार करने की क्षमता प्राप्त करके हासिल किया जा सकता है। दूसरे शब्दों में, स्वराज्य जनता में इस बात का ज्ञान पैदा करके प्राप्त किया जा सकता है कि सत्ता पर कब्ज़ा करने और उसका नियमन करने की क्षमता उसमें है।

(हिन्दी नवजीवन, २९-१-१९२५)

स्वराज्य की रक्षा केवल वहीं हो सकती है, जहाँ देशवासियों की ज़्यादा बड़ी संख्या ऐसे देश-भक्तों की हो, जिनके लिए दूसरी सब चीज़ों से अपने निजी लाभ से भी देश की भलाई का ज़्यादा महत्व हो। स्वराज्य का अर्थ है देश की बहुसंख्यक जनता का शासन । ज़ाहिर है कि जहाँ बहुसंख्यक जनता नीति-भ्रष्ट हो या स्वार्थी हो, वहाँ उसकी सरकार अराजकता की ही स्थिति पैदा कर सकती है, दूसरा कुछ नहीं।

(यंग इंडिया २८-७-१९२१)

मेरे... हमारे... सपनों के स्वराज्य में जाति (रेस) या धर्म के भेदों को कोई स्थान नहीं हो सकता। उस पर शिक्षितों या धनवानों का एकाधिपत्य नहीं होगा। वह स्वराज्य सबके लिए सब

के कल्याण के लिए होगा। सब की गिनती में किसान तो आते ही हैं, किन्तु लूले, लँगड़े, अंधे और भूख से मरने वाले लाखों-करोड़ों मेहनतकश मज़दूर भी अवश्य आते हैं।

(यंग इंडिया, २६-३-१९३१)

'पूर्ण स्वराज्य' कहने में आशय यह है कि वह जितना किसी राजा के लिए होगा, उतना ही किसान के लिए, जितना किसी धनवान ज़मींदार के लिए होगा, उतना ही भूमिहीन खेतिहर के लिए, जितना हिन्दुओं के लिए होगा, उतना ही मुसलमानों के लिए, जितना जैन, यहूदी और सिक्ख लोगों के लिए होगा, उतना ही पारसियों और ईसाइयों के लिए। उसमें जाति-पाँति, धर्म अथवा दरजे के भेदभाव के लिए कोई स्थान नहीं होगा।

(यंग इंडिया, ५-३-१९३१)

मेरे सपने का स्वराज्य तो ग़रीबों का स्वराज्य होगा। जीवन की जिन आवश्यकताओं का उपयोग राजा और अमीर लोग करते हैं, वही ग़रीबों को भी सुलभ होनी चाहिए; इसमें फर्क के लिए स्थान नहीं हो सकता। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि हमारे पास उनके जैसे महल होने चाहिए। सुखी जीवन के लिए महलों की कोई आवश्यकता नहीं। हमें महलों में रख दिया जाये तो हम घबड़ा जायें । लेकिन ग़रीबों को जीवन की वे सामान्य सुविधाएँ अवश्य मिलनी चाहिए, जिनका उपयोग अमीर आदमी करता है। मुझे इस बात में बिलकुल भी संदेह नहीं है कि हमारा स्वराज्य तबतक पूर्ण स्वराज्य नहीं होगा, जबतक वह ग़रीबों को ये सारी सुविधाएँ देने की पूरी व्यवस्था नहीं कर देता।

(यंग इंडिया, २६-३-१९३१)

अहिंसा पर अधारित स्वराज्य में लोगों को अपने अधिकारों का ज्ञान न हो तो कोई बात नहीं, लेकिन उन्हें अपने कर्त्तव्यों का ज्ञान अवश्य होना चाहिए। हरएक कर्तव्य के साथ उसकी तौल का अधिकार जुड़ा हुआ होता ही है और सच्चे अधिकार तो वे ही हैं, जो अपने कर्त्तव्य का योग्य पालन करके प्राप्त किये गए हों । जिन लोगों को अधिकार अपने कर्त्तव्य के पालन के फलस्वरूप मिलते हैं, वे उसका उपयोग समाज की सेवा के लिए ही करते हैं, अपने लिए कभी

नहीं। किसी राष्ट्रीय समाज के स्वराज्य का अर्थ उस समाज के विभिन्न व्यक्तियों के स्वराज्य (अर्थात आत्म-शासन) का योग ही है और ऐसा स्वराज्य व्यक्तियों के द्वारा नागरिकों के रूप में अपने कर्त्तव्य के पालन से ही आता है। उसमें कोई अपने अधिकारों की बात नहीं सोचता । जब उनकी आवश्यकता होती है, तब वे उन्हें मिल जाते हैं और इसलिए मिलते हैं कि वे अपने कर्त्तव्य अपने-आप का सम्पादन ज़्यादा अच्छी तरह कर सकें।

(हरिजन, २५-३-१९३९)

अहिंसा पर आधारित स्वराज्य में कोई किसी का शत्रु नहीं होता, सारी जनता की भलाई का सामान्य उद्देश्य सिद्ध करने में हरएक अपना अभीष्ट योग देता है । सब लिख-पढ़ सकते हैं और उनका ज्ञान दिन-दिन बढ़ता रहता है । बीमारी और रोग कम-से-कम हो जायें, ऐसी व्यवस्था की जाती है। कोई कंगाल नहीं होता और मज़दूरी करना चाहने वाले को काम अवश्य मिल जाता है। ऐसी शासन-व्यवस्था में जुआ, शराबखोरी और दुराचार को या वर्ग-विद्वेष को कोई स्थान नहीं होता। अमीर लोग अपने धन का उपयोग बुद्धिपूर्वक उपयोगी कार्यों में करेंगे, अपनी शान-शौकत बढ़ाने में या शारीरिक सुखों की वृद्धि में उसका अपव्यय नहीं करेंगे। उसमें ऐसा नहीं हो सकता, होना नहीं चाहिए, कि चंद अमीर तो रत्न-जटित महलों में रहें और लाखों-करोड़ों ऐसी मनहूस झोंपड़ियों में, जिनमें हवा और प्रकाश का भी प्रवेश न हो। अहिंसक स्वराज्य में न्यायपूर्ण अधिकारों का किसी के भी द्वारा कोई अतिक्रमण नहीं हो सकता और इसी तरह किसी को कोई अन्यायपूर्ण अधिकार नहीं हो सकते। सुसंगठित राज्य में किसी के न्याय अधिकार का किसी दूसरे के द्वारा अन्याय-पूर्वक छीना जाना असम्भव होना चाहिए और कभी ऐसा हो जाये तो अपहर्त्ता को अपदस्थ करने के लिए हिंसा का आश्रय लेने की ज़रुरत नहीं होनी चाहिए।

(हरिजन २५-३-१९३९)

२. मेरे सपनों का भारत

भारत की हर चीज़ मुझे आकर्षित करती है। सर्वोच्च आकांक्षाएँ रखने वाले किसी व्यक्ति को अपने विकास के लिए जो कुछ चाहिए, वह सब उसे भारत में मिल सकता है।

(यंग इंडिया, २१-२-१९२९)

मैं भारत को स्वतंत्र और बलवान बना हुआ देखना चाहता हूँ, क्योंकि मैं चाहता हूँ कि वह दुनिया के भले के लिए स्वेच्छापूर्वक अपनी पवित्र आहुति दे सके।

(यंग इंडिया, २७-९-१९२९)

हमें अपने हृदयों पर एक पाश्चात्य तत्त्ववेत्ता का यह बोधवाक्य अंकित कर लेना चाहिए 'सादा जीवन और उच्च चिन्तन।' आज तो यह निश्चित है कि हमारे लाखों-करोड़ों लोगों के लिए सुख-सुविधाओं वाला उच्च जीवन सम्भव नहीं है और हम मुट्ठी भर लोग, जो सामान्य जनता के लिए चिन्तन करने का दावा करते हैं, सुख-सुविधाओं वाले उच्च जीवन की निरर्थक खोज में उच्च चिन्तन को खोने का जोखिम उठा रहे हैं।

(यंग इंडिया ३०-४-१९३१)

मैं ऐसे संविधान की रचना करवाने का प्रयत्न करूँगा, जो भारत को हर तरह की गुलामी और परावलम्बन से मुक्त कर दे । मैं ऐसे भारत के लिए कोशिश करूँगा, जिसमें ग़रीब-से-ग़रीब भी यह महसूस करेंगे कि यह उनका देश है जिसके निर्माण में उनकी आवाज का महत्व है। मैं ऐसे भारत के लिए कोशिश करूँगा, जिसमें ऊँचे और नीचे वर्गों का भेद नहीं होगा और जिसमें विविध सम्प्रदायों में पूरा मेलजोल होगा। ऐसे भारत में अस्पृश्यता के या शराब और दूसरी नशीली चीज़ों के अभिशाप के लिए कोई स्थान नहीं हो सकता। उसमें स्त्रियों को वही अधिकार होंगे, जो पुरुषों को होंगे। चूँकि शेष सारी दुनिया के साथ हमारा सम्बन्ध शान्ति का होगा, यानी न तो हम किसी का शोषण करेंगे और न किसी के द्वारा अपना शोषण होने देंगे, इसलिए हमारी सेना छोटी-से-छोटी होगी। ऐसे सब हितों का, जिनका करोड़ों मूक लोगों के हितों से कोई विरोध नहीं है, पूरा

सम्मान किया जायेगा, फिर वे हित देशी हों या विदेशी। अपने लिए तो मैं यह भी कह सकता हूँ कि मैं देशी और विदेशी के फर्क से नफ़रत करता हूँ। यह है मेरे सपनों का भारत।

(यंग इंडिया, १०-९-१९३१)

३. भारतीय लोकतंत्र

सर्वोच्च कोटि की स्वतंत्रता के साथ सर्वोच्च कोटि का अनुशासन और विनय होता है । अनुशासन और विनय से मिलने वाली स्वतंत्रता को कोई छीन नहीं सकता। संयमहीन स्वच्छंदता, संस्कार-हीनता की द्योतक है, उससे व्यक्ति की अपनी और पड़ोसियों की भी हानि होती है।

प्रजातंत्र का अर्थ यह मैं समझा हूँ कि इस तंत्र में नीचे-से-नीचे और ऊँचे-से-ऊँचे आदमी को आगे बढ़ने का समान अवसर मिलना चाहिए । लेकिन अहिंसा के बिना ऐसा हो ही नहीं सकता।

(यंग इंडिया, ३-६-१९२६)

जन्मजात लोकतंत्रवादी वह होता है, जो जन्म से ही अनुशासन का पालन करने वाला हो। लोकतंत्र स्वाभाविक रूप में उसी को प्राप्त होता है, जो साधारण रूप में अपने को मानवी तथा दैवी, सभी नियमों का स्वेच्छा-पूर्वक पालन करने का अभ्यस्त बना ले। जो लोग लोकतंत्र के इच्छुक हैं, उन्हें चाहिए कि पहले वे लोकतंत्र की इस कसौटी पर अपने को परख लें । इसके अलावा, लोकतंत्रवादी को निःस्वार्थ भी होना चाहिए। उसे अपनी या अपने दल की दृष्टि से नहीं, बल्कि एकमात्र लोकतंत्र की ही दृष्टि से सब-कुछ सोचना चाहिए, तभी वह सविनय अवज्ञा का अधिकारी हो सकता है। व्यक्तिगत स्वतंत्रता की मैं कदर करता हूँ, लेकिन आपको यह हरगिज़ नहीं भूलना चाहिए कि मनुष्य मूलत: एक सामाजिक प्राणी ही है। सामाजिक प्रगति की आवश्यकताओं के अनुसार अपने व्यक्तित्व को ढालना सीखकर ही वह वर्तमान स्थिति तक पहुँचा है। अबाध व्यक्तिवाद वन्य पशुओं का नियम है। हमें व्यक्तिगत स्वतंत्रता और सामाजिक संयम के बीच समन्वय करना सीखना है। समस्त समाज के हित की खातिर सामाजिक संयम के आगे स्वेच्छापूर्वक सिर झुकाने से व्यक्ति और समाज, जिसका कि वह एक सदस्य है, दोनों का ही कल्याण होता है।

(हरिजन सेवक, २७-५-१९३९)

प्रजातंत्र में लोगों को चाहिए कि वे कोई सरकारी ग़लती देखें तो उसकी तरफ़ उसका ध्यान खींचें और सन्तुष्ट हो जायें । अगर वे चाहें तो अपनी सरकार को हटा सकते हैं, मगर उसके ख़िलाफ़ आन्दोलन करके उसके कामों में बाधा न डालें।

(दिल्ली-डायरी, पृ० ९०)

सच्ची लोकशाही केन्द्रों में बैठे हुए बीस आदमी नहीं चला सकते। वह तो नीचे से हरएक गाँव के लोगों द्वारा चलायी जानी चाहिए।

(हरिजन, १८-१-१९४८)

४. ग्राम-पंचायत

ग्राम-स्वराज्य की मेरी कल्पना यह है कि वह एक ऐसा पूर्ण प्रजातंत्र होगा, जो अपनी अहम ज़रूरतों के लिए अपने पड़ोसी पर भी निर्भर नहीं करेगा और फिर भी बहुतेरी दूसरी ज़रूरतों के लिए, जिनमें दूसरों का सहयोग अनिवार्य होगा, वह परस्पर सहयोग से काम लेगा। इस तरह हरएक गाँव का पहला काम यह होगा कि वह अपनी ज़रूरत का तमाम अनाज और कपड़े के लिए कपास खुद पैदा कर ले। उसके पास इतनी सुरक्षित ज़मीन होनी चाहिए, जिसमें ढोर चर सकें और गाँवों के बड़ों और बच्चों के लिए मन बहलाव के साधन और खेल-कूद के मैदान वगैरा का बन्दोबस्त हो सके। इसके बाद भी ज़मीन बची तो उसमें वह ऐसी उपयोगी फसलें बोयेगा, जिन्हें बेचकर वह आर्थिक लाभ उठा सके, यों वह गाँजा, तम्बाकू, अफीम वगैरा की खेती से बचेगा।

हरएक गाँव में गाँव की अपनी एक नाटकशाला, पाठशाला और सभा भवन रहेंगे । पानी के लिए उसका अपना इन्तज़ाम होगा – वाटर वर्क्स होंगे –जिससे गाँव के सभी लोगों को शुद्ध पानी मिला करेगा। कुंओं और तालाबों पर गाँव का पूरा नियंत्रण रखकर यह काम किया जा सकता है। बुनियादी तालीम के आखिरी दरजे तक शिक्षा सबके लिए लाज़िमी होगी। जहाँ तक हो सकेगा गाँव के सारे काम सहयोग के आधार पर किये जायेंगे। जात-पाँत और क्रमागत अस्पृश्यता के जैसे भेद आज हमारे समाज में पाये जाते हैं, वैसे, इस ग्राम-समाज, में बिल्कुल नहीं रहेंगे।

(हरिजन सेवक, २-८-१९४२)

सत्याग्रह और असहयोग के शास्त्र के साथ अहिंसा की सत्ता ही ग्रामीण समाज का शासन-बल होगी। गाँव की रक्षा के लिए ग्राम-सैनिकों का एक ऐसा दल रहेगा, जिसे लाज़िमी तौर पर बारी-बारी से गाँव के चौकी-पहरे का काम करना होगा। इसके लिए गाँव में ऐसे लोगों का रजिस्टर रखा जायेगा। गाँव का शासन चलाने के लिए हर साल गाँव के पाँच आदमियों की एक पंचायत चुनी जायेगी। इसके लिए नियमानुसार एक ख़ास निर्धारित योग्य वाले गाँव के बालिग स्त्री-पुरुषों

को अधिकार होगा कि वे अपने पंच चुन लें। इस पंचायत को सब प्रकार की आवश्यक सत्ता और अधिकार रहेंगे। चूँकि इस ग्राम-स्वराज्य में आज के प्रचलित अर्थों में सज़ा या दंड का कोई रिवाज नहीं रहेगा, इसलिए यह पंचायत अपने एक साल के कार्यकाल में स्वयं ही धारासभा, न्यायसभा और कार्यकारिणी सभा सारा काम संयुक्त रूप से करेगी।

आज भी अगर कोई गाँव चाहे तो अपने यहाँ इस तरह का प्रजातंत्र कायम कर सकता है। उसके उस काम में मौजूदा सरकार भी ज़्यादा दस्तंदाज़ी नहीं करेगी।

सम्भव है, ऐसे गाँव को तैयार करने में एक आदमी की पूरी ज़िन्दगी ख़त्म हो जाये। सच्चे प्रजातंत्र का और ग्राम-जीवन का कोई भी प्रेमी एक गाँव को लेकर बैठ सकता है और उसी को अपनी सारी दुनिया मानकर उसके काम में मशगूल रह सकता है। निश्चय ही उसे इसका अच्छा ही फल मिलेगा। वह गाँव में बैठते ही एक साथ गाँव के भंगी, कतवैये, चौकीदार, वैद्य और शिक्षक का काम शुरू कर देगा। अगर गाँव का कोई आदमी उसके पास न फटके तो भी वह सन्तोष के साथ अपने सफ़ाई और कताई के काम में जुटा रहेगा।

(हरिजन सेवक, २-८-१९४२)

५. पंचायत राज

आज़ादी नीचे से शुरू होनी चाहिए। हरएक गाँव में जमहूरी सल्तनत या पंचायत का राज होगा। उसके पास पूरी सत्ता और ताकत होगी। इसका मतलब यह है कि हरएक गाँव को अपने पाँव पर खड़ा होना होगा, अपनी ज़रूरतें खुद पूरी कर लेनी होंगी, ताकि वह अपना सारा कारोबार खुद चला सके, यहाँ तक कि वह सारी दुनिया के ख़िलाफ़ अपनी रक्षा खुद कर सके। उसे तालीम देकर इस हद तक तैयार करना होगा कि वह बाहरी हमले के मुकाबले में अपनी रक्षा करते हुए मर-मिटने के लायक बन जाये। इस तरह हमारी आखिरी बुनियाद व्यक्ति पर होगी । इसका यह मतलब नहीं कि पड़ोसियों पर या दुनिया पर भरोसा न रखा जाये, या उनकी राजी-खुशी से दी हुई मदद न ली जाये। कल्पना यह है कि सब लोग आज़ाद होंगे और सब एक-दूसरे पर अपना असर डाल सकेंगे। जिस समाज का हरएक आदमी यह जानता है कि उसे क्या चाहिए और इससे भी बढ़कर जिसमें यह माना जाता है कि बराबरी की मेहनत करके भी दूसरों को जो चीज़ नहीं मिलती है, वह खुद भी किसी को नहीं लेनी चाहिए, वह समाज ज़रूर ही बहुत ऊँचे दरजे की सभ्यता वाला होना चाहिए।

ऐसा समाज अनगिनत गाँवों का बना होगा। उसका फैलाव एक के ऊपर एक के ढंग पर नही, बल्कि लहरों की तरह एक के बाद एक की शक्ल में होगा। ज़िन्दगी मीनार की शक्ल में नहीं होगी, जहाँ ऊपर की तंग चोटी को नीचे के चौड़े पाये पर खड़ा होना पड़ता है। वहाँ तो समुद्र की लहरों की तरह ज़िन्दगी एक के बाद एक घेरे की शक्ल में होगी और व्यक्ति उसका मध्य बिन्दु होगा। यह व्यक्ति हमेशा अपने गाँव की ख़ातिर मिटने को तैयार रहेगा। गाँव अपने इर्द गिर्द के गाँवों के लिए मिटने को तैयार होगा। इस तरह आख़िर सारा समाज ऐसे लोगों का बन जायेगा, जो उद्धत बनकर कभी किसी पर हमला नहीं करते, बल्कि हमेशा नम्र रहते हैं और अपने में समुद्र की उस शान को महसूस करते हैं, जिसके वे एक ज़रूरी अंग हैं।

इसलिए सबसे बाहर का घेरा या दायरा अपनी ताकत का उपयोग भीतर वालों को कुचलने में नहीं करेगा, बल्कि उन सबको ताकत देगा और उनसे ताकत पायेगा।

जब पंचायत राज स्थापित हो जायेगा, तब लोकमत ऐसे भी अनेक काम कर दिखलायेगा, जो हिंसा भी नहीं कर सकती। पंचायत राज में केवल पंचायत की आज्ञा मानी जायेगी और पंचायत बनाये हुए कानून के द्वारा ही अपना कार्य करेगी।

(हरिजन, १-७-१९४७)

६. ग्राम-सेवक

गाँवों में जाकर काम करने से हम चौंकते हैं । हम शहरी लोगों को देहाती जीवन अपनाना बहुत मुश्किल मालूम होता है। बहुतों के शरीर ही गाँव की कठिन चर्या को सहने से इनकार कर देते हैं। परन्तु यदि हम स्वराज्य की स्थापना जनता की भलाई के लिए करना चाहते हैं तथा सिर्फ़ शासकों के मौजूदा दल की जगह उनके जैसा ही कोई दूसरा दल, जो शायद उनसे भी बुरा सिद्ध हो, नहीं बिठाना चाहते तो इस कठिनाई का मुकाबला हमें साहस के साथ ही नहीं, बल्कि वीरता के साथ, अपने प्राणों की बाजी लगा कर करना होगा। आजतक देहाती लोग, हज़ारों और लाखों की संख्या में, हमारे जीवन का पोषण करने के लिए मरते आये हैं, अब उनके जीवन का पोषण करने के लिए हमें मरना होगा। बेशक, उनके मरने में और हमारे मरने में बुनियादी फर्क होगा। वे बिन-जाने और अनिच्छापूर्वक मरे हैं । उनके इस विवश बलिदान ने हमें गिराया है। अब यदि हम ज्ञानपूर्वक और इच्छापूर्वक मरेंगे तो हमारा बलिदान हमें और हमारे साथ समूचे राष्ट्र को ऊपर उठायेगा। यदि हम एक आज़ाद और स्वावलम्बी देश की तरह जीना चाहते हैं तो इस आवश्यक बलिदान से हमें अपना कदम पीछे नहीं हटाना चाहिए।

(यंग इंडिया, १७-४-१९२४)

सुसंस्कृत घर जैसी कोई पाठशाला नहीं और ईमानदार तथा सदाचारी माता-पिता जैसे कोई शिक्षक नहीं। स्कूलों में मिलने वाली प्रचलित शिक्षा गाँववालों पर एक व्यर्थ का बोझ है, जिसका उनके लिए कोई उपयोग नहीं है। उनके बच्चे उसे पाने की आशा नहीं कर सकते और भगवान को धन्यवाद है कि यदि उन्हें सुसंस्कृत घर की तालीम मिल सके तो उन्हें कभी भी उसकी कमी खटकेगी नहीं । अगर ग्राम-सेवक संस्कारवान नहीं है, अगर वह अपने घर में सुसंस्कृत वातावरण पैदा करने की क्षमता नहीं रखता तो उसे ग्राम-सेवक बनने की, ग्राम-सेवक होने का सम्मान और अधिकार पाने की आकांक्षा छोड़ देनी चाहिए। उन्हें लिखने-पढ़ने के ज्ञान की नहीं, अपनी आर्थिक स्थिति के और उसे सुधारने के उपायों के ज्ञान की ज़रुरत है । आज तो वे यंत्रों

की तरह जड़वत् काम करते हैं न तो उनमें अपने आस-पास की परिस्थितियों के प्रति अपनी ज़िम्मेदारी का भान है और न उन्हें अपने कामों में कोई आनन्द ही आता है।

(हरिजन, २३-११-१९३५)

गाँवों की ऐसी बुरी हालत का कारण यह है कि जिन्हें शिक्षा का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, उन्होंने गाँवों की बहुत उपेक्षा की है। उन्होंने अपने लिए शहरी जीवन चुना है। ग्राम-आन्दोलन तो इसी बात का एक प्रयत्न है कि जो लोग सेवा की भावना रखते हैं, उन्हें गाँव में बस कर ग्रामवासियों की सेवा में लग जाने के लिए प्रेरित करके गाँव के साथ स्वास्थ्यप्रद सम्पर्क स्थापित किया जाये। जो लोग सेवा-भाव से ग्राम में बसे हैं, वे अपने सामने कठिनाइयाँ देखकर हतोत्साह नहीं होते। वे तो इस बात को जानकर ही वहाँ जाते हैं कि अनेक कठिनाइयों में, यहाँ तक कि गाँव वालों की उदासीनता के होते हुए भी, उन्हें वहाँ काम करना है। जिन्हें अपने मिशन में और खुद अपने-आप में विश्वास है, वे ही गाँववालों की सेवा करके उनके जीवन पर कुछ असर डाल सकेंगे । सच्चा जीवन बिताना खुद ऐसा सबक है, जिसका आस-पास के लोगों पर ज़रूर असर पड़ता है। जो सिर्फ़ कमाई के लिए ही वहाँ जाते हैं, उनके लिए ग्राम-जीवन कोई आकर्षण नहीं है।

अत: गाँवों में जाने वाले किसी नवयुवक को कठिनाइयों से घबरा कर तो कभी अपना रास्ता नहीं छोड़ना चाहिए। सबके साथ प्रयत्न जारी रखा जाये तो मालूम पड़ेगा कि गाँववाले शहरवालों से बहुत भिन्न नहीं हैं और उन पर दया करने और ध्यान देने से वे भी साथ देंगे। यह निस्सन्देह सच है कि गाँवों में देश के बड़े आदमियों के सम्पर्क का अवसर नहीं मिलता है। हाँ, ग्राम मनोवृत्ति की वृद्धि होने पर नेताओं के लिए यह ज़रूरी हो जायेगा कि गाँव में दौरा करके उनके साथ जीवित सम्पर्क स्थापित करें | मगर चैतन्य, रामकृष्ण, तुलसीदास, कबीर, नानक, दादू, तुकाराम, तिरुवल्लुवर जैसे सन्तों के ग्रन्थों के रूप में महान और श्रेष्ठ जनों का सत्संग तो सबको आज भी प्राप्त है। कठिनाई यही है कि मन को इन स्थायी महत्व की बातों को ग्रहण करने लायक कैसे बनाया जाये। अगर आधुनिक विचारों का राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, वैज्ञानिक साहित्य प्राप्त करने से यहाँ आशय हो तो कुतूहल शांत करने के लिए ऐसा साहित्य मिल सकता है। लेकिन मैं यह मंजूर करता हूँ कि जिस आसानी से धार्मिक साहित्य मिल जाता है, वैसे यह

साहित्य नहीं मिलता। सन्तों ने तो सर्व-साधारण के ही लिए लिखा और कहा है; पर आधुनिक विचारों को सर्व-साधारण के ग्रहण करने योग्य रूप में अनूदित करने का शौक अभी पूरे रूप में सामने नहीं आया है।

(हरिजन सेवक, २०-२-१९३७)

(नीचे दी गयीं कुछ आवश्यक योग्यताएँ गांधीजी ने सत्याग्रहियों के लिए आवश्यक बतलाई थीं। लेकिन चूँकि उनके मतानुसार एक ग्राम-सेवक को ही सच्चा सत्याग्रही होना चाहिए, इसलिए ये योग्यताएँ ग्राम-सेवक पर लागू होने वाली मानी जा सकती हैं ।):

१. ईश्वर में उसकी सजीव श्रद्धा होनी चाहिए, क्योंकि वही उसका आधार है।

२. वह सत्य और अहिंसा को धर्म मानता हो और इसलिए उसे मनुष्य-स्वभाव की सुप्त सात्विकता में विश्वास होना चाहिए। अपनी तपश्चर्या के रूप में प्रदर्शित सत्य और प्रेम के द्वारा वह उस सात्विकता को जाग्रत करना चाहता हो।

३. वह चरित्रवान हो और अपने लक्ष्य के लिए जान और माल को कुरबान करने के लिए तैयार हो।

४. वह आदतन खादीधारी हो और कातता हो। हिन्दुस्तान के लिए यह लाज़िमी है।

५. वह निर्व्यसनी हो, जिससे कि उसकी बुद्धि हमेशा स्वच्छ और स्थिर रहे।

६. अनुशासन के नियमों का पालन करने में हमेशा तत्पर रहता हो। यह न समझना चाहिए कि इन शर्तों में ही सत्याग्रही की योग्यताओं की परिसमाप्ति हो जाती है।

(हरिजन सेवक, २५-३-१९३९)

७. समग्र ग्राम-सेवा

गाँव में जितने लोग रहते हैं, उन्हें पहचानना, उन्हें जो सेवा चाहिए, वह देना, अर्थात उनके लिए साधन जुटा देना और उनको वह काम करना सिखा देना, दूसरे कार्यकर्ता पैदा करना आदि काम ग्राम-सेवक करेगा। ग्राम-सेवक ग्रामवासियों पर इतना प्रभाव डालेगा कि वे खुद आकर उससे सेवा माँगेंग और उनके लिए जो साधन या दूसरे कार्यकर्ता चाहिए, उन्हें जुटाने के लिए उसकी पूरी मदद करेंगे। मानो कि मैं देहात में घानी लगाकर बैठा हूँ तो घानी से सम्बन्ध रखने वाले सब काम तो कर ही लूँगा। मगर मैं सामान्य १५-२० रुपये कमानेवाला घाँची (तैली) नहीं बनूँगा। 'महात्मा' शब्द मैंने विनोद में इस्तेमाल किया। इसका अर्थ केवल यह है कि अपने घाँचीपने में मैं इतनी सिद्धि डाल दूँगा कि गाँव वाले आश्चर्यचकित हो जायेंगे। मैं गीता पढ़ने वाला, कुरान शरीफ पढ़ने वाला, उनके लड़कों को शिक्षा दे सकने की शक्ति रखने वाला घाँची होऊँगा, समय के अभाव से मैं लड़कों को सिखा न सकूँ, यह दूसरी बात है। लोग आकर कहेंगे, तेली महाशय, हमारे लड़के के लिए एक शिक्षक तो ला दीजियेगा। मैं कहूँगा, "शिक्षक मैं ला दूँगा, मगर उसका खर्चा आपको बरदाश्त करना होगा।" वे खुशी से उसको स्वीकार करेंगे। मैं उन्हें कातना सिखा दूँगा। जब वे बुनकर की मदद की माँग करेंगे तो शिक्षा की तरह उन्हें बुनकर ला दूँगा, ताकि जो चाहें सो बुनना भी सीख लें। उन्हें मैं ग्राम-सफ़ाई का महत्व बताऊँगा। जब वे सफ़ाई के लिए भंगी माँगेंगे तो मैं कहूँगा, मैं खुद भंगी हूँ, आइए, आपको यह काम भी सिखा दूँ। यह है मेरी समग्र ग्राम-सेवा की कल्पना। आप कह सकते हैं कि इस युग में तो ऐसा घाँची पैदा नहीं होने वाला है तो मैं आपसे कहूँगा, तब इस युग में ग्राम भी ऐसे-के-ऐसे रहने वाले हैं।

रूस के घाँची को लीजिये। तेल की मिलें चलाने वाले भी तो घाँची ही हैं न ? उनके पास पैसे रहते हैं। मगर पैसे को क्या महत्व देना था ? पैसा तो मनुष्य के हाथ का मैल है। सच्ची शक्ति ज्ञान में रही है। ज्ञानी के पास नैतिक प्रतिष्ठा और नैतिक बल रहता है, इसलिए सब लोग ऐसे आदमी की सलाह पूछने जाते हैं।

(हरिजन सेवक, १७-३-१९४६)

यह हिन्दुस्तान की बदकिस्मती है कि जैसी दलबन्दी और मतभेद शहरों में है, वैसे ही देहातों में भी देखे जाते हैं और जब गाँव की भलाई का ख़याल न रखते हुए अपनी पार्टी की ताकत बढ़ाने के लिए गाँव का उपयोग करने के ख़याल से राजनैतिक सत्ता की बू हमारे देहातों में पहुँचती है तो उससे देहातियों को मदद मिलने की बजाय उनकी तरक्की में रुकावट ही होती है। मैं तो कहूँगा कि चाहे जो नतीजा हो, हमें ज़्यादा-से-ज़्यादा मात्रा में स्थानीय मदद लेनी चाहिए और अगर हम राजनैतिक सत्ता हड़पने की बुराई से दूर रहें तो हमारे हाथों कोई बुराई होने की सम्भावना नहीं रहती। हमें याद रखना चाहिए कि शहरों के अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे स्त्री-पुरुषों ने हिन्दुस्तान के आधार बने हुए गाँवों को भुला देने का गुनाह किया है। इसलिए आजतक की हमारी इस लापरवाही को याद करने से हममें धीरज पैदा होगा। अभी तक मैं जिस-जिस गाँव में गया हूँ, वहाँ मुझे एक-न-एक सच्चा कार्यकर्त्ता मिला ही है। लेकिन गाँवों में भी लेने लायक कोई अच्छी चीज़ होती है, ऐसा मानने की नम्रता हममें नहीं है। बेशक हमें स्थानीय राजनैतिक मामलों से परे रहना चाहिए। लेकिन यह हम तभी कर सकते हैं कि जब हम सारी पार्टियों की और किसी भी पार्टी में शामिल न होने वाले लोगों की सच्ची मदद लेना सीख जायेंगे।

(हरिजन सेवक, २-३-१९४७)

८. युवकों को आह्वान

मेरी आशा देश के युवकों पर है। उनमें जो बुरी आदतों के शिकार हैं, वे स्वभाव से बुरे नहीं हैं। वे उनमें लाचारी से और बिना सोचे-समझे फँस जाते हैं। उन्हें समझना चाहिए कि इससे उनका और देश के युवकों का कितना नुकसान हुआ है। उन्हें यह भी समझना चाहिए कि कठोर अनुशासन द्वारा नियमित जीवन ही उन्हें और राष्ट्र को सम्पूर्ण विनाश से बचा सकता है ; कोई दूसरी चीज़ नहीं।

(यंग इंडिया ९-७-१९२५)

सबसे बड़ी बात तो यह है कि उन्हें ईश्वर की खोज करनी चाहिए और प्रलोभनों से बचने के लिए उसकी मदद माँगनी चाहिए। उसके बिना यंत्र की तरह केवल अनुशासन का पालन करने से विशेष लाभ नहीं होगा। ईश्वर की खोज का, उसके ध्यान और दर्शन का अर्थ यह है कि जिस तरह बालक बिना किसी प्रदर्शन की आवश्यकता के अपनी माँ के प्रेम को महसूस करता है, उसी तरह हम भी यह महसूस करें कि ईश्वर हमारे हृदयों में विराजमान है।

(यंग इंडिया, ९-७-१९२५)

युवकों को, जो भविष्य के विधाता होने का दावा करते हैं, राष्ट्र का नमक रक्षक तत्व होना चाहिए। यदि यह नमक ही अपना खारापन छोड़ दे, तो उसे खारा कैसे बनाया जाये ?

(यंग इंडिया, २२-१२-१९२७)

युवक तो सर्वत्र भावना के प्रवाह में बह जाने वाले होते हैं। इसीलिए अध्ययन-काल में, यानी कम-से-कम २५ वर्ष की आयु तक, प्रतिज्ञापूर्वक ब्रह्मचर्य का पालन करने की आवश्यकता है।

(हरिजन, ६-५-१९३३)

युवावस्था की निर्दोष पवित्रता एक अमूल्य निधि है। इन्द्रियों की क्षणिक तृप्ति के लिए, जिसे भूल से सुख का नाम दिया जाता है, उसे खोना नहीं चाहिए।

(हरिजन, २१-९-१९३५)

अपना सारा ज्ञान और पांडित्य तराजू के एक पलड़े पर और सत्य तथा पवित्रता को दूसरे पलड़े पर रखकर देखो । सत्य और पवित्रता वाला पलड़ा पहले पलड़े से कहीं भारी पड़ेगा। नैतिक अपवित्रता की विषैली हवा आज हमारे विद्यार्थियों में भी जा पहुँची है और किसी छिपी हुई महामारी की तरह उनकी भयंकर बरबादी कर रही है। इसलिए मैं तुम लोगों से, लड़कों से और लड़कियों से, अनुरोध करता हूँ कि तुम अपने मन और शरीर को पवित्र रखो। तुम्हार सारा पांडित्य और शास्त्रों का तुम्हारा सारा अध्ययन बिलकुल बेकार होगा, यदि तुम उनकी शिक्षाओं को अपने दैनिक जीवन में न उतार सको। मैं जानत हूँ कि कुछ शिक्षक भी ऐसे हैं, जो पवित्र और स्वच्छ जीवन नहीं बिताते। उनसे मैं कहूँगा कि वे अपने छात्रों को दुनिया का सारा ज्ञान सिखा दें, परन्तु यदि वे उनमें सत्य और पवित्रता की लगन पैदा न करें तो यही कहना होगा कि उन्होंने अपने छात्रों के साथ द्रोह किया है और उन्हें ऊपर उठाने की बजाय आत्म-नाश के मार्ग की ओर प्रवृत्त किया है। चरित्र के अभाव में ज्ञान बुराई को ही बढ़ाने वाली शक्ति है, जैसा कि हम ऊपर से भले दिखाई देने वाले, किन्तु भीतर से चोरी और बेईमानी का धंधा करने वाले अनेक लोगों के मामले में देखते हैं।

(यंग इंडिया २१-२-१९२९)

मैं चाहता हूँ कि तुम (नवयुवक) गाँवों में जाओ और वहाँ जमकर बैठ जाओ, उनके मालिकों या उपकार-कर्त्ताओं की तरह नहीं, बल्कि उनके विनम्र सेवकों की तरह। तुम्हारी दैनिक चर्या से और तुम्हारे रहन-सहन से उन्हें समझने दो कि उन्हें खुद क्या करना है और अपना रहने का ढंग किस तरह बदलना है; महज भावना का कोई उपयोग नहीं है, ठीक उसी तरह जैसे कि भाप का अपने-आप में कोई उपयोग नहीं। भाप को उचित नियंत्रण में रखा जाये, तभी उसमें प्रचंड शक्ति पैदा होती है । यही बात भावना की है । मैं चाहता हूँ कि तुम भारत की आहत आत्मा के लिए शान्तिदायी लेप लेकर जाने वाले भगवान के दूतों की तरह उनके बीच में जा पहुँचो।

(यंग इंडिया, २९-१२-१९२७)

शारीरिक श्रम के साथ अकारण ही जो शर्म की भावना जुड़ गयी है, वह अगर दूर की जा सके तो सामान्य बुद्धि वाले हरएक युवक और युवती के लिए उन्हें जितना चाहिए, उससे कहीं अधिक काम पड़ा हुआ है।

(हरिजन, १-३-१९३५)

जो आदमी अपनी जीविका ईमानदारी से कमाना चाहता है, वह किसी भी श्रम को छोटा यानी अपनी प्रतिष्ठा को घटाने वाला नहीं मानेगा। महत्व की बात यह कि भगवान ने हमें जो हाथ-पाँव दिये हैं, उनका उपयोग करने के लिए हम तैयार रहें।

(हरिजन, १९-१२-१९३६)

९. राष्ट्र का आरोग्य, स्वच्छता और आहार

अब तो यह बात निर्विवाद सिद्ध हो चुकी है कि तन्दुरुस्ती के नियमों को न जानने से और उन नियमों के पालन में लापरवाह रहने से ही मनुष्य-जाति का जिन-जिन रोगों से परिचय हुआ है, उनमें से ज़्यादतर रोग उसे होते हैं। बेशक, हमारे देश की दूसरे देशों से बढ़ी-चढ़ी मृत्युसंख्या का ज़्यादातर कारण ग़रीबी है, जो हमारे देशवासियों के शरीर को कुरेदकर खा रही है; लेकिन अगर उनको तन्दुरुस्ती के नियमों की ठीक-ठाक तालीम दी जाये तो इसमें बहुत कमी की जा सकती है।

मनुष्य-जाति के लिए साधारणत: नियम यह है कि मन चंगा है तो शरीर भी चंगा है। नीरोग शरीर में निर्विकार मन का वास होता है, यह एक स्वयंसिद्ध सच्चाई है । मन और शरीर के बीच अटूट सम्बन्ध है । अगर हमारे मन निर्विकार यानी नीरोग हों तो वे हर तरह की हिंसा से मुक्त हो जायें; फिर हमारे हाथों तन्दुरुस्ती के नियमों का सहज भाव से पालन होने लगे और किसी तरह की ख़ास कोशिश के बिना ही हमारे शरीर तन्दुरुस्त रहने लगें। इन कारणों से मैं यह आशा रखता हूँ कि कोई भी कांग्रेसी रचनात्मक कार्यक्रम के इस अंग के बारे में लापरवाह न रहेगा। तन्दुरुस्ती के कायदे और आरोग्यशास्त्र के नियम बिलकुल सरल और सादे हैं और वे आसानी से सीखे जा सकते हैं। मगर उन पर अमल करना मुश्किल है। नीचे मैं ऐसे कुछ नियम देता हूँ :

१. हमेशा शुद्ध विचार करो और तमाम गन्दे व निकम्मे विचारों को मन से निकाल दो।

२. दिन-रात ताज़ी-से-ताज़ी हवा का सेवन करो।

३. शरीर और मन के काम का तौल बनाये रखो, यानी दोनों को बेमेल न होने दो।

४. तनकर खड़े रहो, तनकर बैठो और अपने हर काम में साफ़-सुथरे रहो और इन सब आदतों को अपनी आन्तरिक स्वस्थता का प्रतिबिम्ब बनने दो।

१०. गो-रक्षा

हिन्दू धर्म की मुख्य वस्तु है गो-रक्षा। हिन्दुस्तान में गाय ही मनुष्य का सबसे सच्चा साथी, सबसे बड़ा आधार थी। यही हिन्दुस्तान की एक कामधेनु थी। वह सिर्फ़ दूध ही नहीं देती थी, बल्कि सारी खेती का आधार-स्तम्भ थी। गाय दयाधर्म की मूर्तिमंत कविता है । यह लाखों-करोड़ों हिन्दुस्तानियों को पालने वाली माता है। इस गाय की रक्षा करना ईश्वर की सारी मूक सृष्टि की रक्षा करना है । जिस अज्ञात ऋषि या द्रष्टा ने गो-पूजा चलाई, उसने गाय से शुरुआत की। इसके सिवा और कोई ध्येय हो ही नहीं सकता। गो-रक्षा हिन्दू धर्म की दुनिया को दी हुई एक कीमती भेंट है और हिन्दू धर्म भी तभी तक रहेगा, जबतक गाय की रक्षा करने वाले हिन्दू हैं।

(यंग इंडिया, ६-१०-१९२१)

गो-माता जन्म देने वाली माँ से कहीं बढ़कर है। माँ तो साल-दो साल दूध पिलाकर हमसे फिर जीवनभर सेवा की आशा रखती है, पर गो-माता को तो सिवा दाने और घास के किसी सेवा की आवश्यकता ही नहीं। माँ की तो हमें उसकी बीमारी में सेवा करनी पड़ती है; परन्तु गो-माता केवल जीवन-पर्यन्त ही हमारी अटूट सेवा नहीं करती, बल्कि उसके मरने के बाद भी हम उसके मांस, चर्म, हड्डी, सींग आदि से अनेक लाभ उठाते हैं। यह सब मैं जन्मदात्री माता का दरजा कम करने को नहीं कहता, बल्कि यह दिखाने के लिए कहता हूँ कि गो-माता हमारे लिए कितनी पूज्य है।

(हरिजन सेवक, २१-९-१९४०)

हमारे ढोरों की दुर्दशा के लिए अपनी गरीबी का राग भी हम नहीं अलाप सकते। यह हमारी निर्दय लापरवाही के सिवा और किसी भी बात की सूचक नहीं है । हालाँकि हमारे पिंजरापोल, हमारी दयावृत्ति पर खड़ी हुई संस्थाएँ हैं तो भी वे उस वृत्ति का अत्यन्त भद्दा अमल करने वाली संस्थाएँ ही हैं। वे आदर्श गोशालाओं या डेरियों और समृद्ध राष्ट्रीय संस्थाओं के रूप में चलने के बजाय केवल लूले-लंगड़े ढोर रखने के धर्मादा खाते बन गये हैं। गोरक्षा के धर्म का दावा करते हुए भी हमने गाय और उसकी सन्तान को गुलाम बनाया है और हम खुद भी गुलाम बन गये हैं।

(यंग इंडिया, ६-१०-१९२१)

लेकिन मैं फिर से इस बात पर ज़ोर देता हूँ कि कानून बनाकर गो-वध बन्द करने से गोरक्षा नहीं हो जाती । वह तो गो-रक्षा के काम का छोटे-से-छोटा भाग है।

(यंग इंडिया, ७-७-१९२७)

अब सवाल यह है कि जब गाय अपने पालन-पोषण के खर्च से भी कम दूध देने लगती है या दूसरी तरह से नुकसान पहुँचाने वाला बोझ बन जाती है, तब बिना मारे उसे कैसे बचाया जा सकता है ? इस सवाल का जवाब थोड़े में इस तरह दिया जा सकता है :

१. हिन्दू, गाय और उसकी सन्तान की तरफ़ अपना फ़र्ज़ पूरा करके उसे बचा सकते हैं । अगर वे ऐसा करें तो हमारे जानवर हिन्दुस्तान और दुनिया के गौरव बन सकते हैं। आज इससे बिलकुल उल्टा ही हो रहा है।

२. जानवरों के पालन-पोषण का शास्त्र सीखकर गाय की रक्षा की जा सकती है। आज तो इस काम में पूरी अन्धाधुन्धी चलती है।

३. हिन्दुस्तान में आज जिस बेरहम तरीके से बैलों को बधिया बनाया जाता है, उसकी जगह पश्चिम के हमदर्दी भरे और नरम तरीके काम में लाकर उसे कष्ट से बचाया जा सकता है।

४. हिन्दुस्तान के सारे पिंजरापोलों का पूरा-पूरा सुधार किया जाना चाहिए। आज तो हर जगह पिंजरापोल का इन्तज़ाम ऐसे लोग करते हैं, जिनके पास न तो कोई योजना होती है और न वे अपने काम की जानकारी ही रखते हैं।

५. जब ये महत्त्व के काम कर लिये जायेंगे तो मुसलमान खुद दूसरे किसी कारण से नहीं तो अपने हिन्दू भाइयों के खातिर ही मांस या दूसरे मतलब के लिए गाय को न मारने की ज़रुरत को समझ लेंगे।

(हरिजन सेवक, ३१-८-१९४७)

मुझे यह देखकर आश्चर्य होता है कि हम लोग भैंस के दूध-घी का कितना पक्षपात करते हैं। असल में हम निकट का स्वार्थ देखते हैं, दूर के लाभ का विचार नहीं करते, नहीं तो यह साफ़

है कि अन्त में गाय ही ज़्यादा उपयोगी है। गाय के घी और मक्खन में एक ख़ास तरह का पीला रंग होता है, जिसमें भैंस के मक्खन से कहीं अधिक केरोटीन यानी विटामिन रहता है। उसमें एक ख़ास तरह का स्वाद भी है। मुझसे मिलने आने वाले विदेशी यात्री सेवाग्राम में गाय का शुद्ध दूध पीकर खुश हो जाते हैं और यूरोप में तो भैंस के घी और मक्खन के बारे में कोई जानता ही नहीं। हिन्दुस्तान ही एक ऐसा देश है, जहाँ भैंस का घी-दूध इतना पसन्द किया जाता है। इससे गाय की बरबादी हुई है। इसीलिए मैं कहता हूँ कि हम सिर्फ़ गाय पर ही ज़ोर न देंगे तो गाय नहीं बच सकेगी।

(हरिजन सेवक, २२-२-४२१)

११. साधन और साध्य

लोग कहते हैं, "आख़िर साधन तो साधन ही हैं।" मैं कहूँगा, "आखिर तो साधन ही सबकुछ हैं ।" जैसे साधन होंगे, वैसा ही साध्य होगा। साधन और साध्य को अलग करने वाली कोई दीवार नहीं है। वास्तव में सृष्टिकर्ता ने हमें साधनों पर नियंत्रण (और वह भी बहुत सीमित नियंत्रण) दिया है; साध्य पर तो कुछ भी नहीं दिया। लक्ष्य की सिद्धि ठीक उतनी ही शुद्ध होती है, जितने हमारे साधन शुद्ध होते हैं । यह बात ऐसी है, जिसमें किसी अपवाद की गुंजाइश नहीं है।

(यंग इंडिया, १७-७-१९२४)

हिंसापूर्ण उपायों से लिया गया स्वराज्य भी हिंसापूर्ण होगा और वह दुनिया के लिए तथा खुद भारत के लिए भय का कारण सिद्ध होगा।

(यंग इंडिया, १८-७-१९२४)

गन्दे साधनों से मिलनेवाली चीज़ भी गन्दी ही होगी। इसलिए राजा को मारकर राजा और प्रजा एक से नहीं बन सकेंगे। मालिक का सिर काटकर मज़दूर मालिक नहीं हो सकेंगे। यही बात सब पर लागू की जा सकती है।

कोई असत्य से सत्य को नहीं पा सकता। सत्य को पाने के लिए हमेशा सत्य का आचरण करना ही होगा। अहिंसा और सत्य की तो जोड़ी है न ? हरगिज़ नहीं। सत्य में अहिंसा छिपी हुई है और अहिंसा में सत्य। इसीलिए मैंने कहा है कि सत्य और अहिंसा एक ही सिक्के के दो रुख़ हैं। दोनों की कीमत एक ही है। केवल पढ़ने में ही फर्क है; एक तरफ़ अहिंसा है, दूसरी तरफ़ सत्य। पूरी-पूरी पवित्रता के बिना अहिंसा और सत्य निभ ही नहीं सकते । शरीर या मन की अपवित्रता को छिपाने से असत्य और हिंसा ही पैदा होगी।

इसलिए सत्यवादी, अहिंसक और पवित्र समाजवादी ही दुनिया में या हिन्दुस्तान में समाजवाद फैला सकता है।

(हरिजन सेवक, १३-८-१९४७)

१२. संरक्षकता का सिद्धान्त

फ़र्ज़ कीजिये कि विरासत के या उद्योग-व्यवसाय के द्वारा मुझे प्रचुर सम्पत्ति मिल गयी। तब मुझे यह जानना चाहिए कि वह सब सम्पत्ति मेरी नहीं है, बल्कि मेरा तो उस पर इतना ही अधिकार है कि जिस तरह दूसरे लाखों आदमी गुजर करते हैं, उसी तरह मैं भी इज्ज़त के साथ अपनी गुजर भर कहूँ। मेरी शेष सम्पत्ति पर राष्ट्र का हक़ है और उसी के हितार्थ उसका उपयोग होना आवश्यक है। समाजवादी इन सुविधा-प्राप्त वर्गों को ख़त्म कर देना चाहते हैं, जबकि मैं यह चाहता हूँ कि वे (ज़मींदार और राजा-महाराजा) अपने लोभ और सम्पत्ति के बावजूद उन लोगों के समकक्ष बन जायें, जो मेहनत करके रोटी कमाते हैं। मज़दूरों को यह महसूस करना होगा कि मज़दूर का काम करने की शक्ति पर जितना अधिकार है, मालदार आदमी का अपनी सम्पत्ति पर उससे भी कम है।

यह दूसरी बात है कि इस तरह के सच्चे ट्रस्टी कितने हो सकते हैं। अगर सिद्धान्त ठीक हैं तो यह बात गौण है कि उनका पालन अनेक लोग कर सकते हैं या केवल एक ही आदमी कर सकता है । यह प्रश्न आत्मविश्वास का है । अगर आप अहिंसा के सिद्धान्त को स्वीकार करें तो आपको उसके अनुसार आचरण करने की कोशिश करनी चाहिए, चाहे उसमें आपको सफलता मिले या असफलता । आप यह तो कह सकते हैं कि इस पर अमल करना मुश्किल है, लेकिन इस सिद्धान्त में ऐसी कोई बात नहीं कि जिसके लिए यह कहा जा सके कि वह बुद्धिग्राह्य नहीं है।

(हरिजन सेवक, ३-३-१९३९)

आप कह सकते हैं कि ट्रस्टीशिप तो कानून-शास्त्र की एक कल्पना-मात्र है; व्यवहार में उसका कहीं कोई अस्तित्व दिखाई नहीं पड़ता। लेकिन यदि लोग उस पर सतत् विचार करें और उसे आचरण में उतारने की कोशिश भी करते रहें तो मनुष्य-जाति के जीवन की नियामक शक्ति के रूप में प्रेम आज जितना प्रभावशाली दिखाई देता है, उससे कहीं अधिक दिखाई पड़ेगा। बेशक, पूर्ण ट्रस्टीशिप तो युक्लिड की बिन्दु की व्याख्या की तरह एक कल्पना ही है और उतना ही अप्राप्य भी है, लेकिन यदि उसके लिए कोशिश की जाये तो दुनिया में समानता की स्थापना

की दिशा में हम दूसरे किसी उपाय से जितनी दूर तक जा सकते हैं, उसके बजाय इस उपाय से ज़्यादा दूर तक जा सकेंगे। मेरा दृढ़ निश्चय है कि यदि राज्य ने पूँजीवाद को हिंसा के द्वारा दबाने की कोशिश की तो वह खुद ही हिंसा के जाल में फँस जायेगा और फिर कभी भी अहिंसा का विकास नहीं कर सकेगा। राज्य अहिंसा का एक केन्द्रित और संगटित रूप ही है। व्यक्ति में आत्मा होती है, परन्तु चूँकि राज्य एक जड़ यंत्र-मात्र है, इसलिए उसे हिंसा से कभी नहीं छुड़ाया जा सकता, क्योंकि हिंसा से ही तो उसका जन्म होता है। इसीलिए मैं ट्रस्टीशिप के सिद्धान्त को तरजीह देता हूँ। यह डर हमेशा बना रहता है कि कहीं राज्य उन लोगों के ख़िलाफ़, जो उससे मतभेद रखते हैं, बहुत ज़्यादा हिंसा का उपयोग न करे। लोग यदि स्वेच्छा से ट्रस्टियों की तरह व्यवहार करने लगें तो मुझे सचमुच बड़ी खुशी होगी। लेकिन यदि वे ऐसा न करें तो मेरा ख़याल है कि हमें राज्य के द्वारा भरसक कम हिंसा का आश्रय लेकर उनसे उनकी सम्पत्ति ले लेनी पड़ेगी। (यही कारण है कि मैंने गोलमेज परिषद में यह कहा था कि सभी निहित हितवालों की सम्पत्ति की जाँच होनी चाहिए और जहाँ आवश्यक मालूम हो, वहाँ उनकी सम्पत्ति राज्य को मुआवज़ा दिये बिना ही, जहाँ जैसा उचित हो, अपने हाथों में कर लेना चाहिए।) व्यक्तिगत तौर पर तो मैं यह चाहूँगा कि राज्य के हाथों में शक्ति का ज़्यादा केंन्द्रीकरण न हो, उसकी बजाय ट्रस्टीशिप की भावना का विस्तार हो, क्योंकि मेरी राय में राज्य की हिंसा की तुलना में वैयक्तिक मालिकी की हिंसा कम हानिकर है, लेकिन यदि राज्य की मालिकी अनिवार्य ही हो तो मैं भरसक कम-से-कम राज्य की मालिकी की सिफारिश करूँगा।

(दि मॉडर्न रिव्यू, १९३५, पृ० ४१२)

मेरा ट्रस्टीशिप का सिद्धान्त कोई ऐसी चीज़ नहीं है, जो काम निकालने के लिए आज गढ़ लिया गया हो। अपनी मंशा छिपाने के लिए खड़ा किया गया आवरण तो वह हरगिज़ नहीं है। मेरा विश्वास है कि दूसरे सिद्धांत जब नहीं रहेंगे, तब भी वह रहेगा। उसके पीछे तत्त्वज्ञान और धर्म के मालिकों ने इस पिद्धान्त के अनुसार आचरण नहीं किया है, इस बात से यह सिद्ध नहीं होता कि वह सिद्धान्त झूठा है; इससे धन के मालिकों की कमज़ोरी मात्र सिद्ध होती है। अहिंसा के साथ किसी दूसरे सिद्धान्त का मेल ही नहीं बैठता । अहिंसक मार्ग की खूबी यह है कि अन्यायी यदि

अपना अन्याय दूर नहीं करता तो वह अपना गाश खुद कर डालता है, क्योंकि अहिंसक असहयोग के कारण या तो वह अपनी गलती देखने और सुधारने के लिए मजबूर हो जाता है या वह बिलकुल अकेला पड़ जाता है।

(हरिजन, १६-१२-१९३९)

१३. बुनियादी शिक्षा

इस तालीम की मंशा यह है कि गाँव के बच्चों को सुधार-सँवार कर उन्हें गाँव का आदर्श बाशिन्दा बनाया जाये। इसकी योजना खासकर उन्हीं को ध्यान में रखकर तैयार की गयी है। इस योजना की असल प्रेरणा भी गाँव से ही मिली है। जो कांग्रेस जन-स्वराज्य की इमारत को बिलकुल उसकी नींव या बुनियाद से चुनना चाहते हैं, वे देश के बच्चों की उपेक्षा कर ही नहीं सकते । परदेशी हुकूमत चलाने वालों ने, अनजाने ही क्यों न हो, शिक्षा के क्षेत्र में अपने काम की शुरुआत बिना चूके बिलकुल छोटे बच्चों से की है । हमारे यहाँ जिसे प्राथमिक शिक्षा कहा जाता है, वह तो एक मज़ाक है। उसमें गाँव में बसने वाले हिन्दुस्तान की ज़रूरतों और माँगों का ज़रा भी विचार नहीं किया गया है और वैसे देखा जाये तो उसमें शहरों का भी कोई विचार नहीं हुआ है। बुनियादी तालीम हिन्दुस्तान के तमाम बच्चों को, फिर वे गाँव के रहने वाले हों या शहरों के, हिन्दुस्तान के सभी श्रेष्ठ और स्थायी तत्वों के साथ जोड़ देती है । यह तालीम बालक के मन और शरीर दोनों का विकास करती है, बालक को अपने वतन के साथ जोड़े रखती है, उसे अपने और देश के भविष्य का गौरवपूर्ण चित्र दिखाती है और उस चित्र में देखे हुए भविष्य के हिन्दुस्तान का निर्माण करने में बालक या बालिकाएँ अपने स्कूल जाने के दिन से ही हाथ बँटाने लगें, इसका इन्तज़ाम करती है।

(रचनात्मक कार्यक्रम, पृ० २८-२९)

बुनियादी शिक्षा का उद्देश्य दस्तकारी के माध्यम से बालकों का शारीरिक बौद्धिक और नैतिक विकास करना है। लेकिन मैं मानता हूँ कि कोई भी पद्धति, जो शैक्षणिक दृष्टि से सही हो और जो अच्छी तरह चलायी जाये, आर्थिक दृष्टि से भी उपयुक्त सिद्ध होगी। उदाहरण के लिए, हम अपने बच्चों को मिट्टी के खिलौने बनाना भी सिखा सकते हैं, जो बाद में तोड़कर फेंक दिये जाते हैं । इससे भी उनकी बुद्धि का विकास तो होगा, लेकिन इसमें इस महत्वपूर्ण नैतिक सिद्धान्त की उपेक्षा होती है कि मनुष्य के श्रम और न साधन-सामग्री का अपव्यय कदापि न होना चाहिए। उनका अनुत्पादक उपयोग कभी नहीं करना चाहिए। अपने जीवन के प्रत्येक क्षण का सदुपयोग

ही होना चाहिए, इस सिद्धान्त के पालन का आग्रह नागरिकता के गुण का विकास करने वाली सर्वोत्तम शिक्षा है, साथ ही इससे बुनियादी तालीम स्वावलम्बी भी बनाती है।

(हरिजन, ६-४-१९४०)

यहाँ हम बुनियादी तालीम के ख़ास-ख़ास सिद्धान्तों पर विचार करें :

१. पूरी शिक्षा स्वावलम्बी होनी चाहिए, यानी आख़िर में पूँजी को छोड़कर अपना सारा ख़र्च उसे खुद देना चाहिए।

२. इसमें आखिरी दरजे तक हाथ का पूरा-पूरा उपयोग किया जाये, यानी विद्यार्थी अपने हाथों से कोई-न-कोई उद्योग-धंधा आख़िरी दरजे तक करें।

३. सारी तलीम विद्यार्थियों की प्रान्तीय भाषा द्वारा दी जानी चाहिए।

४. इनमें साम्प्रदायिक, धार्मिक शिक्षा के लिए कोई जगह नहीं होगी लेकिन बुनियादी नैतिक तालीम के लिए काफ़ी गुंजाइश होगी।

५. यह तालीम, फिर उसे बच्चे लें या बड़े, औरतें लें या मर्द, विद्यार्थी अपने आपको सारे हिन्दुस्तान का नागरिक समझेंगे, इसलिए उन्हें एक आंतर-प्रांतीय भाषा सीखनी होगी। सारे देश की एक भाषा नागरी या उर्दू में लिखी जाने वाली हिन्दुस्तानी ही हो सकती है । इसलिए विद्यार्थियों को दोनों लिपियाँ अच्छी तरह सीखनी होंगी।

(हरिजन, २-११-१९४७)

हमारे जैसे ग़रीब देश में हाथ की तालीम जारी रखने से दो हेतु सिद्ध होंगे। उससे हमारे बालकों की शिक्षा का खर्च निकल आयेगा और वे ऐसा धंधा सीख लेंगे, जिसका अगर वे चाहें तो उत्तर जीवन में अपनी जीविका के लिए सहारा ले सकते हैं । इस पद्धति से हमारे बालक आत्म-निर्भर अवश्य हो जायेंगे। राष्ट्र को कोई चीज़ इतना कमज़ोर नहीं बनायेगी, जितनी यह बात कि हम श्रम का तिरस्कार करना सीखें ।

(यंग इंडिया, १-९-१९२१)

१४. शिक्षा का आश्रमी आदर्श

शिक्षा के बारे में मेरी अपनी कुछ मान्यताएँ हैं :

१. लड़कों और लड़कियों को एक साथ शिक्षा देनी चाहिए। यह बाल्यावस्था आठ वर्ष तक मानी जाये।

२. उनका समय मुख्यतः शारीरिक काम में बीतना चाहिए और यह काम भी शिक्षक की देखरेख में होना चाहिए। शारीरिक काम को शिक्षा का अंग माना जये।

३. हर लड़के और लड़की की रुचि को पहचान कर उसे काम सौंपना चाहिए।

४. हरेक काम लेते समय उसके कारण की जानकारी करानी चाहिए।

५. लड़का या लड़की समझने लगे, तभी से उसे साधारण ज्ञान देना चाहिए। उसका यह ज्ञान अक्षर-ज्ञान से पहले शुरू होना चाहिए।

६. अक्षर-ज्ञान को सुन्दर लेखन-कला का अंग समझकर पहले बच्चे को भूमिति की आकृतियाँ खींचना सिखाया जाये और उसकी उँगलियों पर उसका काबू हो जाये, तब उसे वर्णमाला लिखना सिखाया जाये, यानी उसे शुरू से ही शुद्ध अक्षर लिखना सिखाया जाये।

७. लिखने से पहले बच्चा पढ़ना सीखे, यानी अक्षरों को चित्र समझकर उन्हें पहचानना सीखे और फिर चित्र खींचे।

८. इस तरह से जो बच्चा शिक्षक के मुँह से ज्ञान पायेगा, वह आठ वर्ष के भीतर अपनी शक्ति के अनुसार काफ़ी ज्ञान पा लेगा।

९. बच्चों को जबरन् कुछ न सिखाया जाये।

१०. वे जो सीखें, उस में उन्हें रस आना ही चाहिए।

११. बच्चों को शिक्षा खेल जैसी लगनी चाहिए । खेल-कूद भी शिक्षा का अंग है।

१२. बच्चों की सारी शिक्षा मातृभाषा द्वारा होनी चाहिए।

१३. बच्चों को हिन्दी-उर्दू का ज्ञान राष्ट्रभाषा के तौर पर दिया जाये। उसका आरम्भ अक्षर-ज्ञान से पहले होना चाहिए।

१४. धार्मिक शिक्षा ज़रूरी मानी जाये। वह पुस्तक द्वारा नहीं, बल्कि शिक्षक के आचरण और उसके मुँह से मिलनी चाहिए।

१५. नौ से सोलह वर्ष का दूसरा काल है।

१६. दूसरे काल में भी अन्त तक लड़के-लड़कियों की शिक्षा साथ-साथ हो तो अच्छा है।

१७, दूसरे काल में हिन्दू बालक को संस्कृत का और मुसलमान बालक को अरबी का ज्ञान मिलना चाहिए।

१८. इस काल में भी शारीरिक काम तो चालू ही रहेगा। पढ़ाई-लिखाई का समय ज़रूरत के अनुसार बढ़ाया जाना चाहिए।

१९. इस काल में माता-पिता का धंधा यदि निश्चित रूप से मालूम हो तो बच्चों को उसी धंधे क ज्ञान मिलना चाहिए और उसे इस तरह तैयार किया जाये कि वह अपने बाप-दादा के धंधे से जीविका चलाना पसन्द करे। यह नियम लड़की पर लागू नहीं होता।

२०. सोलह वर्ष तक लड़के-लड़कियों को दुनिया के इतिहास और भूगोल का तथा वनस्पति-शास्त्र, खगोल-विद्या, गणित, भूमिति और बीजगणित का साधारण ज्ञान हो जाना चाहिए।

२१. सोलह वर्ष के लड़के-लड़की को सीना-पिरोना और रसोई बनाना आ जान चाहिए।

२२. सोलह से पच्चीस वर्ष के समय को मैं तीसरा काल मानता हूँ । इस काल में प्रत्येक युवक और युवती को उसकी इच्छा और स्थिति के अनुसार शिक्षा मिले।

२३. नौ वर्ष के बाद आरम्भ होने वाली शिक्षा स्वावलम्बी होनी चाहिए, यानी विद्यार्थी पढ़ते हुए ऐसे उद्योगों में लगा रहे, जिनकी आमदनी से शाला खर्च चले।

२४. शाला में आमदनी तो पहले से ही होने लगनी चाहिए, किन्तु शुरू के वर्षों में खर्च पूरा होने लायक आमदनी नहीं होगी।

२५. शिक्षकों को बड़ी-बड़ी तनख़्वाहें नहीं मिल सकतीं, किन्तु वे जीविका चलाने लायक तो होनी ही चाहिए। शिक्षकों में सेवा-भावना चाहिए। प्राथमिक शिक्षा के लिए कैसे भी शिक्षक से काम चलाने का रिवाज निन्दनीय है। सभी शिक्षक चरित्रवान होने चाहिए।

२६. शिक्षा के लिए बड़ी और ख़र्चीली इमारतों की ज़रूरत नहीं है।

२७. अंग्रेज़ी का अभ्यास भाषा के रूप में ही हो सकता है और उसे पाठ्यक्रम में जगह मिलनी चाहिए। जैसे हिन्दी राष्ट्रभाषा है, वैसे ही अंग्रेज़ी का उपयोग दूसरे राष्ट्रों के साथ के व्यवहार और व्यापार के लिए है।

(सच्ची शिक्षा, पृ० ७-९-१९५१)

१५. विद्यार्थियों के लिए अनुशासन के नियम

१. विद्यार्थियों को दलबन्दी वाली राजनीति में कभी शामिल नहीं होना चाहिए। विद्यार्थी विद्या के खोजी और ज्ञान का शोध करने वाले हैं, राजनीति के खिलाड़ी नहीं ।

२. उन्हें राजनैतिक हड़तालें नहीं करनी चाहिए। विद्यार्थी वीरों की पूजा चाहे करें, उन्हें करनी चाहिए; लेकिन जब उनके वीर जेलों में जायें, या मर जायें, या यों कहिये कि उन्हें फाँसी पर लटकाया जाये, तब उनके प्रति अपनी भक्ति प्रकट करने के लिए उनको उन वीरों के उत्तम गुणों का अनुकरण करना चाहिए, हड़ताल नहीं । ऐसे मौकों पर विद्यार्थियों का शौक असह्य हो जाये और हरएक विद्यार्थी की वैसी भावना बन जाये तो अपनी संस्था के अधिकारी की सम्मति से स्कूल और कॉलेज बन्द रखे जायें । संस्था के अधिकारी विद्यार्थियों की बात न सुनें तो उन्हें छूट है कि वे उचित रीति से, सभ्यतापूर्वक, अपनी-अपनी संस्थाओं से बाहर निकल जायें और तबतक वापस न जायें, जबतक संस्था के व्यवस्थापक पछताकर उन्हें वापस न बुलायें । किसी भी हालत में और किसी भी विचार से उन्हें अपने से भिन्न मत रखने वाले विद्यार्थियों या स्कूल-कॉलेज के अधिकारियों के साथ जबरदस्ती नहीं करनी चाहिए। उन्हें यह विश्वास होना चाहिए कि अगर वे अपनी मर्यादा के अनुरूप व्यवहार करेंगे और मिलकर रहेंगे तो जीत उन्हीं की होगी।

३. सब विद्यार्थियों को सेवा की ख़ातिर शास्त्रीय तरीके से कातना चाहिए । कताई के अपने साधनों और दूसरे औजारों को उन्हें हमेशा साफ़-सुथरा, सुव्यवस्थित और अच्छी हालत में रखना चाहिए। सम्भव हो तो वे अपने हथियारों, औजारों या साधनों को खुद ही बनाना सीख लें । अलबत्ता, उनका काता हुआ सूत सबसे बढ़िया होगा। कताई-सम्बन्धी सारे साहित्य का और उसमें छिपे आर्थिक, सामाजिक, नैतिक और राजनैतिक सब रहस्यों का उन्हें अध्ययन करना चाहिए।

४. अपने पहनने-ओढ़ने के लिए वे हमेशा खादी का ही उपयोग करें और गाँवों में बनी चीज़ों के बदले परदेश की या यंत्रों की बनी वैसी चीज़ों को कभी न बरतें।

५. वन्देमातरम् गाने या राष्ट्रीय झण्डा फहराने के मामले में वे दूसरों पर ज़बरदस्ती न करें। राष्ट्रीय झण्डे के बिल्ले वे खुद अपने बदन पर चाहे लगायें, लेकिन दूसरों को उसके लिए मजबूर न करें।

६. तिरंगे झण्डे के संदेश को अपने जीवन में उतार कर दिल में साम्प्रदायिकता या अस्पृश्यता को घुसने न दें। दूसरे धर्मों वाले विद्यार्थियों और हरिजनों को अपना भाई समझकर उनके साथ सच्ची दोस्ती कायम करें।

७. अपने दुःखी-दर्दी पड़ोसियों की सहायता के लिए वे तुरन्त दौड़ जायें; आसपास के गाँवों में सफ़ाई का और भंगी का काम करें और गाँव के बड़ी उमरवाले स्त्री-पुरुषों और उनके बच्चों को पढ़ावें।

८. आज हिन्दुस्तानी का जो दोहरा स्वरूप तय हुआ है, उसके अनुसार उसकी दोनों शैलियों और दोनों लिपियों के साथ वे राष्ट्रभाषा हिन्दुस्तानी सीख लें, ताकि जब हिन्दी या उर्दू बोली जाये अथवा नागरी या उर्दू लिपि लिखी जाये, तब उन्हें वह नयी न मालूम हो।

९. विद्यार्थी जो भी कुछ नया सीखें, उस सबको अपनी मातृभाषा में लिख लें और जब वे हर हफ्ते अपने आसपास के गाँवों में दौरा करने निकलें तो उसे अपने साथ ले जायें और लोगों तक पहुचायें ।

१०. वे लुक-छिपकर कुछ न करें; जो करें, खुल्लम-खुल्ला करें। अपने हर काम में उनका व्यवहार बिल्कुल शुद्ध हो । वे अपने जीवन को संयमी और निर्मल बनायें । किसी चीज़ से न डरें और निर्भय रहक़र अपने कमज़ोर साथियों की रक्षा करने में मुस्तैद रहें; और दंगों के अवसर पर अपनी जान की परवाह न करके अहिंसक रीति से उन्हें मिटाने को तैयार रहें । और, जब स्वराज्य की आखिरी लड़ाई छिड़ जाये, तब अपनी शिक्षण-संस्थाएँ छोड़कर लड़ाई में कूद पड़ें और ज़रूरत पड़ने पर देश के आज़ादी के लिए अपनी ज़ान कुरबान कर दें।

११. अपने साथ पढ़नेवाली विद्यार्थिनी बहनों के प्रति वे अपना व्यवहार बिलकुल शुद्ध और सभ्यतापूर्ण रखें।

विद्यार्थियों को अपनी सारी छुट्टियाँ ग्राम-सेवा में लगानी चाहिए। इसके लिए उन्हें मामूली रास्तों पर घूमने जाने की बजाय उन गाँवों में जाना चाहिए, जो उनकी संस्थाओं के पास हों । वहाँ जाकर उन्हें गाँव के लोगों की हालत का अध्ययन करना चाहिए और उनसे दोस्ती करनी चाहिए। इस आदत से वे देहातवालों के सम्पर्क में आयेंगे और जब विद्यार्थी सचमुच उनमें जाकर रहेंगे, तब पहले के कभी-कभी के सम्पर्क के कारण गाँव वाले उन्हें अपना हितैषी समझकर उनका स्वागत करेंगे, न कि अजनवी मानकर उन पर सन्देह करेंगे। लम्बी छुट्टियों में विद्यार्थी देहात में ठहरें, प्रौढ़शिक्षा के वर्ग चलायें, ग्रामवासियों को सफ़ाई के नियम सिखायें और मामूली बीमारियों के बीमारों की दवा-दारू और देखभाल करें। वे उनमें चरखा भी जारी करें और उन्हें अपने हर फालतू समय का उपयोग करना सिखायें। यह काम कर सकने के लिए विद्यार्थियों और शिक्षकों को छुट्टियों के उपयोग के बारे में अपने विचार बदलने होंगे। अक्सर विचारहीन शिक्षक छुट्टियों में घर करने के लिए विद्यार्थियों को पढ़ाई का काम दे देते हैं। मेरी राय में यह आदत हर तरह से बुरी है। छुट्टियों का समय ही तो ऐसा होता है, जब विद्यार्थियों का मन पढ़ाई के रोज़मर्रा के कामकाज से मुक्त रहना चाहिए और स्वावलम्बन तथा मौलिक विकास के लिए स्वतंत्र रहना चाहिए।

विद्यार्थियों को अपनी राय रखने और उसे प्रकट करने की पूरी आज़ादी होनी चाहिए। उन्हें जो भी राजनैतिक दल अच्छा लगता हो,उसके साथ वे खुले तौर पर सहानुभूति रख सकते हैं। लेकिन मेरी राय में जबतक वे अध्ययन कर रहे हैं, तबतक उन्हें कार्य की स्वतंत्रता नहीं दी जा सकती । कोई विद्यार्थी अपना अध्ययन भी करता रहे और साथ ही सक्रिय राजनैतिक कार्यकर्त्ता भी हो, यह शक्य नहीं है।

(हरिजन, २७-१०-१९३७)

विद्यार्थियों का दलगत राजनीति में पड़ने से काम नहीं चल सकता। जैसे वे सब प्रकार की पुस्तकें पढ़ते हैं, वैसे सब दलों की बात सुन सकते हैं। परन्तु उनका काम यह है कि सबकी सच्चाई को हज़म करें और बाकी को फेंक दें। यही एकमात्र उचित रवैया है, जिसे वे अपना सकते हैं।

सत्ता की राजनीति विद्यार्थी-संसार के लिए अपरिचित होनी चाहिए। वे ज्योंही इस तरह के काम में पड़ेंगे, त्योंही विद्यार्थी के पद से च्युत हो जायेंगे और इसलिए देश के संकट-काल में उसकी सेवा करने में असफल होंगे।

(विद्यार्थियों से, पृ० ८९)

१६. शासकों के लिए संहिता

मुझे डर है कि दबी और गिरी हुई जनता को दु:ख और गरीबी के कीचड़ से उठाने के लिए आवश्यक कानून-कायदे बनाने का कार्य करते रहना होगा। स कीचड़ में उसे एक हद तक तो पूँजीपतियों, ज़मींदारों और तथाकथित उच्च वर्गों ने और बाद में ब्रिटिश शासकों ने अपना यह काम बहुत वैज्ञानिक रीति से किया है। अगर हमें इस जनता का उसकी इस दुरवस्था से उद्धार करना है तो अपना घर सुव्यवस्थित करने की दृष्टि से भारत की राष्ट्रीय सरकार का यह कर्त्तव्य होगा कि वह लगातार उसको ही तरजीह देती रहे और जिन बोझों के भार से उसकी कमर टूटी जा रही है, उनसे उसे मुक्त भी कर दे।

(दि नेशन्स वॉयस, पृ० ७१)

इसके बावजूद कि लोगों की तिजौरी की कौड़ी-कौड़ी को बचाना मुझे बहुत पसन्द है, पैसे की बचत के लिए प्रान्तीय गवर्नरों की संस्था को एकदम उड़ा देना सही अर्थशास्त्र नहीं होगा। गवर्नरों को दखल देने का बहुत अधिकार देना ठीक नहीं है। वैसे ही उनको सिर्फ़ शोभा के लिए पुतला बना देना भी ठीक नहीं होगा। मंत्रियों के काम को दुरुस्त करने का अधिकार उन्हें होना चाहिए । सूबे की खटपट से अलग होने के कारण भी वे सूबे का कारबर ठीक तरह से देख सकेंगे और मंत्रियों को गल्तियों से बचा सकेंगे । गवर्नर लोग अपने-अपने सूबों की नीति के रक्षक होने चाहिए।

(हरिजन सेवक, २१-१२-१९४७)

अगर कांग्रेस को लोकसेवा की ही संस्था रहना है तो मंत्री 'साहब लोगों' की तरह नहीं रह सकते और न सरकारी साधनों का उपयोग निजी कामों के लिए ही कर सकते हैं।

(हरिजन, २९-९-१९४६)

पद-ग्रहण से यदि पद का सदुपयोग किया जाये तो कांग्रेस की प्रतिष्ठा बढ़ेगी और यदि उसका दुरुपयोग होगा तो वह अपनी पुरानी प्रतिष्ठा भी खो देगी। यदि दूसरे परिणाम से बचना हो तो मंत्रियों और विधानसभा के सदस्यों को अपने वैयक्तिक और सार्वजनिक आचरण की जाँच

करते रहना होगा। उन्हें, जैसा अंग्रेज़ी लोकोक्ति में कहा जात है, सीजर की पत्नी की तरह अपने प्रत्येक व्यवहार में सन्देह से परे होना चाहिए । वे अपने पद का उपयोग अपने या अपने रिश्तेदारों अथवा मित्रों के लाभ के लिए नहीं कर सकते। अगर रिश्तेदारों या मित्रों की नियुक्ति किसी पद पर होती है ते उसका कारण यही होना चाहिए कि उस पद के तमाम उम्मीदवारों में वे सबसे ज़्यादा योग्य हैं और बाज़ार में उनका मूल्य, उस सरकारी पद से उन्हें जो कुछ मिलेगा, उससे कहीं ज़्यादा है। मंत्रियों और कांग्रेस के टिकट पर चुने गये विधान-सभा के सदस्यों के अपने कर्त्तव्य के पालन में निर्भय होना चाहिए। उन्हें हमेशा ही अपना स्थान या पद खोने के लिए तैयार रहना चाहिए । विधान-सभाओं की सदस्यता या उसके आधार पर मिलने वाले पद का एकमात्र मूल्य यही है कि वह सम्बन्धित व्यक्तियों को कांग्रेस की प्रतिष्ठा और ताकत बढ़ाने की योग्यता प्रदान करता है। इससे अधिक मूल्य उसका नहीं है। और चूँकि ये दोनों चीज़ें पूरी तरह वैयक्तिक और सार्वजनिक नीतिमत्ता पर निर्भर हैं, इसलिए सम्बन्धित व्यक्तियों की प्रत्येक नैतिक त्रुटि से कांग्रेस को हानि होगी।

(हरिजन, २३-४-१९३८)

१७. अधिकार या कर्त्तव्य ?

अगर हर आदमी हक़ों पर ज़ोर देने की बजाय अपना फ़र्ज़ अदा करे तो मनुष्य-जाति में जल्दी ही व्यवस्था और अमन का राज्य कायम हो जाये। यह सच है कि राजा और रैयत के पैदाइशी भेद मिटने ही चाहिए, क्योंकि वे समाज के हित को नुकसान पहुँचाते हैं, लेकिन यह भी सच है कि अभी तक कुचले और दबा कर रखे गये लाखों-करोड़ों लोगों के हक़ों का ढिठाईभरा दावा भी समाज के हित को ज़्यादा नहीं तो उतना ही नुकसान ज़रूर पहुँचाता है। मैं यह कहने की हिम्मत करूँगा कि जो हक़ पूरी तरह अदा किये गये फ़र्ज़ से नहीं मिलते, वे प्राप्त करने और रखने लायक नहीं हैं। वे दूसरों से छीने गये हक़ होंगे। उन्हें जल्दी-से-जल्दी छोड़ देने में ही भला है। जो अभागे माँ-बाप बच्चों के प्रति अपना फ़र्ज़ अदा किये बिना उनसे अपना हुक्म मनवाने का दावा करते हैं, वे बच्चों की नफ़रत को ही भड़कायेंगे। जो बदचलन पति अपनी वफ़ादार पत्नी से हर बात मनवाने की आशा करता है, वह धर्म के वचन को ग़लत समझता है, उसका एकतरफा अर्थ करता है; लेकिन जो बच्चे हमेशा फ़र्ज़ अदा करने के लिए तैयार रहने वाले माँ-बाप को ज़लील करते हैं, वे कृतघ्न समझे जायेंगे और माँ-बाप के मुकाबले खुद का ज़्यादा नुकसान करेंगे। यही बात पति-पत्नी के बारे में भी कही जा सकती है। अगर यह सदा और सब पर लागू होने वाला कायदा मालिकों और मज़दूरों, ज़मींदारों और किसानों, राजाओं और रैयत, या हिन्दू और मुसलमानों पर लगाया जाये तो हम देखेंगे कि जीवन के हर क्षेत्र में अच्छे-से-अच्छे सम्बन्ध कायम किये जा सकते हैं और ऐसा करने से न तो हिन्दुस्तान या दुनिया के दूसरे हिस्सों की तरह सामाजिक जीवन या व्यापार में किसी तरह की रुकावट आयेगी और न गड़बड़ी पैदा होगी। मैं जिसे सत्याग्रह कहता हूँ, वह नियम अपने-अपने फ़र्ज़ों और उनके पालन से अपने-आप प्रकट होने वाले हक़ों के सिद्धांतों को बराबर समझ लेने का नतीजा है।

राजाओं (शासकों) का फ़र्ज़ है कि वे रिआया के सच्चे सेवकों की तरह काम करें । वे किसी बाहरी सत्ता के दिये हुए हक़ों के बल पर राज्य नहीं करेंगे और तलवार के ज़ोर से तो कभी

भी नहीं। वे सेवा से हासिल किये गए हक़ से और खुद को मिली हुई विशेष बुद्धि के हक़ से राज्य करेंगे।

(हरिजन सेवक, ६-७-१९४७)

१८. बेकारी का सवाल

जबतक एक भी सशक्त आदमी ऐसा हो, जिसे काम न मिलता हो या भोजन न मिलता हो, तबतक हमें आराम करने या भरपेट भोजन करने में शर्म महसूस होनी चाहिए।

(यंग इंडिया, ६-१०-१९२१)

ऐसे देश की कल्पना कीजिये, जहाँ लोग प्रतिदिन औसतन पाँच ही घंटे काम करते हों और वह भी स्वेच्छा से नहीं, बल्कि परिस्थितियों की लाचारी के कारण। बस, आपको भारत की सही तस्वीर मिल जायेगी। यदि पाठक इस तस्वीर को देखना चाहता हो तो उसे अपने मन से शहरी जीवन में पायी जाने वाली व्यस्त दौड़-धूप को, या कारखानों के मज़दूरों की शरीर को चूर कर देने वाली थकावट को या चाय-बागानों में दिखाई पड़ने वाली गुलामी को दूर कर देना चाहिए। ये तो भारत की आबादी के समुद्र की कुछ बूँदें ही हैं। अगर उसे कंकाल-मात्र रह गये भूखे भारतीयों की तस्वीर देखनी हो, उसे अस्सी प्रतिशत आबादी की बात सोचना चाहिए, जो अपने खेतों में काम करती है, जिसके पास साल में करीब चार महीने तक कोई धंधा नहीं होता और इसलिए जो लगभग भुखमरी की ज़िन्दगी जीती हैं । यह उसकी सामान्य स्थिति है । इस विवश बेकारी में बार-बार पड़ने वाले अकाल काफ़ी बड़ी वृद्धि करते हैं।

(यंग इंडिया, ३-११-१९२१)

एक तरह से देखें तो हमारे देश में बेकारी का सवाल उतना कठिन नहीं है, जितना दूसरे देशों में है। इस सवाल का लोगों के रहन-सहन के तरीके से घनिष्ठ सम्बन्ध है। पश्चिम के बेकार मज़दूरों को गरम कपड़े चाहिए, दूसरे लोगों की ही तरह जूते और मोजे चाहिए, गरम घर चाहिए और ठंडी आबोहवा में आवश्यक अन्य अनेक वस्तुएँ चाहिए। हमें इन सब चीज़ों की ज़रूरत नहीं है। अपने देश में जो भयानक गरीबी और बेकारी है, उसे देखकर मुझे रोना आता है । लेकिन मुझे स्वीकार करना चाहिए कि इस स्थिति के लिए हमारी अपनी उपेक्षा और अज्ञान ही ज़िम्मेदार हैं। शरीर-श्रम करने में जो गौरव है, उसे हम नहीं जानते। उदाहरण के लिए, मोची जूते बनाने के सिवा कोई दूसरा काम नहीं करता । वह ऐसा समझता है कि दूसरे काम उसकी प्रतिष्ठा के अनुकूल नहीं

हैं । यह ग़लत ख़याल दूर होना चाहिए। उन सब लोगों के लिए, जो अपने हाथों और पाँवों से ईमानदारी के साथ मेहनत करना चाहते हैं, हिन्दुस्तान में काफ़ी धंधा है। ईश्वर ने हरएक को काम करने की और अपनी रोज़ की रोटी से ज़्यादा कमाने की क्षमता दी है, और जो भी इस क्षमता का उपयोग करने के लिए तैयार हो, उसे काम अवश्य मिल सकता है। ईमान की कमाई करने की इच्छा रखने वाले को चाहिए कि वह किसी भी काम को नीचा न माने । ज़रूरत इस बात की है कि ईश्वर ने हमें जो हाथ-पाँव दिये हैं, उनका उपयोग करने के लिए हम तैयार रहें।

(हरिजन, १९-१२-१९३६)

१९. राष्ट्रभाषा और लिपि

अगर हमें एक राष्ट्र होने का अपना दावा सिद्ध करना है तो हमारी अनेक बातें एक-सी होनी चाहिए। भिन्न-भिन्न धर्म और सम्प्रदायों को एकसूत्र में बाँधने वाली हमारी त्रुटियाँ और बाधाएँ भी एक-सी हैं । मैं यह बताने की कोशिश कर रहा हूँ कि हमारी पोशाक के लिए एक ही तरह का कपड़ा न केवल वांछनीय है, बल्कि आवश्यक भी है । हमें एक सामान्य भाष की भी ज़रूरत है, देशी भाषाओं की जगह पर नहीं, परन्तु उसके सिवा इस बात में साधारण सहमति है कि यह माध्यम हिन्दुस्तानी ही होना चाहिए, जो हिन्दी और उर्दू के मेल से बने और जिसमें न तो संस्कृत की और न फ़ारसी या अरबी की ही भरमार हो। हमारे रास्ते की सबसे बड़ी रुकावट हमारी देशी भाषाओं की लिपियाँ हैं। अगर एक सामान्य लिपि अपनाना सम्भव हो तो एक सामान्य भाषा का हमारा जो स्वप्न है अभी तो वह स्वप्न ही है उसे पूरा करने के मार्ग की एक बड़ी बाधा दूर हो जायेगी।

भिन्न-भिन्न लिपियों का होना कई तरह से बाधक है। वह ज्ञान की प्राप्ति में एक कारगर रुकावट है। आर्य भाषाओं में इतनी समानता है कि अगर भिन्न-भिन्न लिपियाँ सीखनें में बहुत-सा समय बरबाद न करना पड़े तो हम सब किसी बड़ी कठिनाई के बिना कई भाषाएँ जान लें। उदाहरण के लिए, जो लोग संस्कृत का थोड़ा भी ज्ञान रखते हैं, उनमें से अधिकांश को रवीन्द्रनाथ टैगोर की अद्वितीय कृतियों को समझने में कोई कठिनाई न हो, अगर वे सब देवनागरी लिपि में छपें । परन्तु बंगला लिपि मानो गैर-बंगालियों के लिए 'दूर रहो' की सूचना है। इसी तरह यदि बंगाली लोग देवनागरी लिपि जानते हों तो वे तुलसीदास की रचनाओं की अद्भुत सुन्दरता और आध्यात्मिकता तथा अन्य अनेक हिन्दुस्तानी लेखकों का आनन्द अनायास लूट सकते हैं । समस्त भारत के लिए सामान्य लिपि एक दूर का आदर्श है। परन्तु जो भारतीय संस्कृत से उत्पन्न भाषाएँ और दक्षिण की भाषाएँ बोलते हैं, उन सबके लिए एक सामान्य लिपि एक व्यावहारिक आदर्श है, अगर हम सिर्फ़ अपनी-अपनी प्रान्तीयता को छोड़ दें।

मैं मानता हूँ कि इस बात का कोई प्रत्यक्ष प्रमाण देने की ज़रूरत नहीं कि देवनागरी ही सर्व-सामान्य लिपि होनी चाहिए, क्योंकि उसके पक्ष में निर्णायक बात यह है कि उसे भारत के अधिकांश भाग के लोग जानते हैं । जो वृत्ति इतनी वर्जनाशील और संकीर्ण हो कि हर बोली को विरस्थायी बनाना और विकसित करना चाहती हो, वह राष्ट्रविरोधी और विश्व-विरोधी है। मेरी विनम्र सम्मति में तमाम अविकसित और अलिखित बोलियों का बलिदान करके उन्हें हिन्दुस्तानी की बड़ी धारा में मिला देना चाहिए। यह आत्मोत्कर्ष के लिए की गयी कुरबानी होगी, आत्महत्या नहीं। अगर हमें सुसंस्कृत भारत के लिए एक सामान्य भाषा बनानी हो तो हमें भाषाओं और लिपियों की संख्या बढ़ाने वाली या देश की शक्तियों को छिन्न-भिन्न करने वाली किसी भी क्रिया का बढ़ना रोकना होगा। हमें भाषा की वृद्धि करनी होगी। अगर मेरी चले तो जमी हुई प्रान्तीय लिपि के साथ-साथ मैं सब प्रान्तों में देवनागरी लिपि और उर्दू लिपि का सीखना अनिवार्य कर दूँ और विभिन्न देशी भाषाओं की मुख्य-मुख्य पुस्तकों को उनके शब्दश: हिन्दुस्तानी अनुवाद के साथ देवनागरी में छपवा दूँ।

(यंग इंडिया, २७-८-१९२५)

राष्ट्रभाषा के ये लक्षण होने चाहिए :

१. वह भाषा सरकारी नौकरों के लिए आसान होनी चाहिए।

२. उस भाषा के द्वारा भारत का आपसी धार्मिक, आर्थिक और राजनैतिक कामकाज हो सकना चाहिए।

३. उस भाषा को भारत के ज़्यादातर लोग बोलते हों।

४. वह भाषा राष्ट्र के लिए आसान हो।

५. उस भाषा का विचार करते समय क्षणिक या कुछ समय तक रहने वाली स्थिति पर ज़ोर न दिया जाये।

अंग्रेज़ी भाषा में इनमें से एक भी लक्षण नहीं है।

तो फिर कौन-सी भाषा इन पाँच लक्षणों वाली है ? यह माने बिना काम नहीं चल सकता कि हिन्दी भाषा में ये सारे लक्षण मौजूद हैं।

ये पाँच लक्षण रखने में हिन्दी की होड़ करने वाली और कोई भाषा नहीं है। हिन्दी के बाद दूसरा दर्जा बंगला का है। फिर भी बंगाली लोग बंगाल के बाहर हिन्दी का उपयोग करते हैं । हिन्दी बोलने वाले जहाँ जाते हैं, वहाँ हिन्दी का ही उपयोग करते हैं और इससे किसी को अचम्भा नहीं होता। हिन्दी के धर्मोपदेशक ओर उर्दू के मौलवी सारे भारत में अपने भाषण हिन्दी में ही देते हैं और अपढ़ जनता उन्हें समझ लेती है। जहाँ अनपढ़ गुजराती भी उत्तर में जाकर थोड़ी-बहुत हिन्दी का उपयोग कर लेता है, वहाँ उत्तर का 'भैया' बम्बई के सेठ की नौकरी करते हुए भी गुजराती बोलने से इनकार करता है और सेठ 'भैया' के साथ टूटी-फूटी हिन्दी बोल लेता है । मैंने देखा है कि ठेठ द्रविड़ प्रान्त में भी हिन्दी की आवाज़ सुनाई देती है। यह कहना ठीक नहीं कि मद्रास में तो अंग्रेज़ी से ही काम चलता है । वहाँ भी मैंने अपना सारा काम हिन्दी से चलाया है। सैंकड़ों मद्रासी मुसाफिरों को मैंने दूसरे लोगों के साथ हिन्दी में बोलते सुना है। इसके सिवा, मद्रास के मुसलमान भाई तो अच्छी तरह हिन्दी बोलना जानते हैं। यहाँ यह ध्यान में रखना चाहिए कि सारे भारत के मुसलमान उर्दू बोलते हैं और उनकी संख्या सारे प्रान्तों में कुछ कम नहीं है।

इस तरह हिन्दी भाषा पहले से ही राष्ट्रभाषा बन चुकी है। हमने वर्षों पहले उसका राष्ट्रभाषा के रूप में उपयोग किया है। उर्दू भी हिन्दी की इस शक्ति से ही पैदा हुई है।

मुसलमान बादशाह भारत में फ़ारसी-अरबी को राष्ट्रभाषा नहीं बना सके। उन्होंने हिन्दी के व्याकरण को मान कर उर्दू लिपि काम में ली और फ़ारसी शब्दों का ज़्यादा उपयोग किया, परन्तु आम लोगों के साथ अपना व्यवहार वे विदेशी भाषा के द्वारा नहीं चला सके। यह हालत अंग्रेज अधिकारियों से छिपी हुई नहीं है, जिन्हें लड़ाकू वर्गों का अनुभव है। वे जानते हैं कि पैनिकों के लिए चीज़ों के नाम हिन्दी या उर्दू में रखने पड़ते हैं।

इस तरह हम देखते हैं कि हिन्दी ही राष्ट्रभाषा हो सकती है। फिर भी मद्रास के पढ़े-लिखों के लिए यह सवाल कठिन है। लेकिन दक्षिणी, बंगाली, सिंधी और गुजराती लोगों के लिए तो वह बड़ा आसान है। कुछ महीनो में वे हिन्दी पर अच्छा काबू करके राष्ट्रीय काम-काज उसमें चला सकते हैं। तामिल भाइयों के बारे में यह उतना आसान नहीं। तामिल आदि द्राविड़ी हिस्सों की

अपनी भाषाएँ हैं और उनकी बनावट और उनका व्याकरण संस्कृत से अलग है। शब्दों की एकता के सिवा और कोई एकता संस्कृत भाषाओं और द्राविड़ भाषाओं में नहीं पाई जाती।

परन्तु यह कठिनाई सिर्फ़ आज के पढ़े-लिखे लोगों के लिए ही हैं । उनके स्वदेशाभिमान पर भरोसा करने और विशेष प्रयत्न करके हिन्दी सीख लेने की आशा रखने का हमें अधिकार है। भविष्य में यदि हिन्दी को उसका राष्ट्रभाषा का पद मिले तो हर मद्रासी स्कूल में हिन्दी पढ़ाई जायेगी और मद्रास तथा दूसरे प्रान्तों के बीच विशेष परिचय होने की सम्भावना बढ़ जायेगी। अंग्रेज़ी भाषा द्राविड़ जनता में नहीं घुस सकी, पर हिन्दी को घुसने में देर नहीं लगेगी। तेलुगु जाति तो आज भी यह प्रयत्न कर रही है।

(सच्ची शिक्षा, पृ० १९-२३)

२०. हड़तालें

आजकल हड़तालों का दौरदौरा है। वे वर्तमान असंतोष की निशानी हैं। तरह-तरह के अनिश्चित विचार हवा में फैल रहे हैं। सबके दिलों में एक धुँधली-सी आशा बँधी हुई है और यदि वह आशा निश्चित रूप धारण नहीं करेगी तो लोगों को बड़ी निराशा होगी। और देशों की तरह भारत में भी मज़दूर-जगत उन लोगों की दया पर निर्भर है, जो सलाहकार और पथदर्शक बन जाते हैं। ये लोग सदा सिद्धांत-पालक नहीं होते और सिद्धान्त-पालक होते भी हैं तो हमेशा बुद्धिमान नहीं होते। मज़दूरों को अपनी हालत पर असन्तोष है। असन्तोष के लिए उनके पास पूरे कारण हैं। उन्हें यह सिखाया जा रहा है और ठीक सिकाया जा रहा है कि अपने मालिकों को धनवान बनाने का मुख्य साधन वे ही हैं। राजनैतिक स्थिति भी भारत के मज़दूरों को प्रभावित करने लगी है। ऐसे मज़दूर नेताओं का अभाव नहीं है, जो यह समझते हैं कि राजनैतिक हेतुओं के लिए हड़तालें कराई जा सकती हैं।

मेरी राय में ऐसे हेतु के लिए मज़दूर-हड़ताल का उपयोग करना अत्यन्त गम्भीर भूल होगी। मैं इससे इनकार नहीं करता कि ऐसी हड़तालों से राजनैतिक ग़रज़ पूरी की जा सकती हैं, परन्तु वे अहिंसक असहयोग की योजना में नहीं आती । यह समझने के लिए बुद्धि पर बहुत ज़ोर डालने की ज़रूरत नहीं है कि जबतक मज़दूर देश की राजनैतिक स्थिति को समझ न लें और सबकी भलाई के लिए काम करने को तैयार न हों, तबतक मज़दूरों का राजनैतिक उपयोग करना बहुत ही ख़तरनाक बात होगी। इस व्यवहार की उनसे अचानक आशा रखना कठिन है। यह आशा उस वक्त तक नहीं रखी जा सकती, जबतक वे अपनी खुद की हालत इतनी अच्छी न बना लें कि शरीर और आत्मा की ज़रूरतें पूरी करके सभ्य और शिष्ट जीवन व्यतीत कर सकें।

(स्पीचेज एण्ड राइटिंग्ज़ ऑफ महात्मा गांधी, पृ. १०४९)

इसलिए सबसे बड़ी राजनैतिक सहायता मज़दूर यह कर सकते हैं कि वे अपनी स्थिति सुधार लें, अधिक जानकार हो जायें, अपने अधिकारों का आग्रह रखें और जिस माल के तैयार करने में उनका इतना महत्वपूर्ण हाथ होता है, उसके उचित उपयोग की भी मालिकों से माँग करें।

इसलिए मज़दूरों के लिए सही विकास यही होगा कि वे अपना दरजा बढ़ायें और आंशिक मालिकों का दरजा प्राप्त करें।

सफल हड़तालों की शर्तें सीधी-सादी हैं और जब वे पूरी हो जाती हैं तो हड़तालें कभी असफल सिद्ध होनी ही नहीं चाहिए :

१. हड़ताल का कारण न्यायपूर्ण होना चाहिए।
२. हड़तालियों में व्यावहारिक एकमत होना चाहिए।
३. हड़ताल न करने वालों के विरुद्ध हिंसा काम में नहीं लेनी चाहिए।
४. हड़तालियों में यह शक्ति होनी चाहिए कि संघ के कोष का आश्रय लिये बिना वे हड़ताल के दिनों में अपना पालन-पोषण कर सकें। इसके लिए उन्हें किसी उपयोगी और उत्पादक अस्थाई धन्धे में लगना चाहिए।
५. जब हड़तालियों की जगह लेने के लिए दूसरे मज़दूर काफ़ी हों, तब हड़ताल का उपाय बेकार साबित होता है। उस सूरत में अन्यायपूर्ण व्यवहार हो, नाकाफ़ी मज़दूरी मिले या ऐसा ही और कोई कारण हो तो त्याग-पत्र ही उसका एकमात्र उपाय है।
६. उपरोक्त सारी शर्तें पूरी न होने पर भी सफल हड़तालें हुई हैं, परन्तु इससे तो इतना ही सिद्ध होता है कि मालिक कमज़ोर थे और उनका अन्त:करण अपराधी था।

(यंग इंडिया, १६-२-१९२१)

जो हड़ताल माली हालत की बेहतरी के लिए की जाती है, उसमें कभी अन्तिम ध्येय के तौर पर राजनैतिक मकसद की मिलावट नहीं होनी चाहिए। ऐसा करने से राजनैतिक तरक्की कभी नहीं हो सकती, बल्कि होता यह है कि अक्सर हड़तालियों को ही इसका नतीजा भुगतना पड़ता है। चाहे उन हड़तालियों का असर आम लोगों की जिन्दगी पर पड़े या न पड़े, सरकार के सामने कुछ दिक्कतें ज़रूर खड़ी हो सकती हैं, लेकिन उसकी वजह से हुकूमत का काम रुक नहीं सकता। अमीर लोग रुपया ख़र्च करके अपनी आय का बन्दोबस्त खुद कर लेंगे, लेकिन असल मुसीबत तो ग़रीबों को झेलनी पड़ती है। ऐसी हड़ंतालें तो तभी करनी चाहिए, जब इन्साफ कराने के दूसरे उचित साधन असफल साबित हो चुके हों।

ऊपर की इन बातों से यह ज़ाहिर है कि राजनैतिक हड़तालों की अपनी अलग जगह है और उनको आर्थिक हड़तालों के साथ न तो मिलाना चाहिए और न दोनों का आपस में वैसा कोई रिश्ता रखा जाना चाहिए। अहिंसक लड़ाई में राजनैतिक हड़तालों की अपनी एक ख़ास जगह होती है । वे चाहे जब और चाहे जैसे ढंग से नहीं की जानी चाहिए। ऐसी हड़तालें बिलकुल खुली होनी चाहिए और उनमें गुण्डाशाही की कोई गुंजाइश नहीं रहनी चाहिए। उनकी वजह से कहीं किसी तरह की हिंसा नहीं होनी चाहिए।

(हरिजन सेवक, ११-८-१९४६)

२१. शराब शैतान की ईजाद

जैसा कि कहा जाता है, शराब शैतान की ईजाद है। इस्लाम की किताबों में कहा गया है कि जब शैतान ने पुरुषों और स्त्रियों को ललचाना शुरू किया तो उसने उन्हें शराब दिखाई थी। मैंने कितने ही मामलों में यह देखा है कि शराब आदमियों से न सिर्फ़ उनका पैसा छीन लेती है, बल्कि उनकी बुद्धि भी हर लेती है। उसके नशे में वे कुछ क्षणों के लिए उचित और अनुचित का, पुण्य और पाप का, यहाँ तक कि माँ और पत्नी का भेद भी भूल जाते हैं। मैंने शराब के नशे में मस्त बैरिस्टरों को नालियों में लोटते और पुलिस के द्वारा घर ले जाये जाते देखा है। दो अवसरों पर मैंने जहाज के कप्तानों को शराब के नशे में ऐसा ग़र्क देखा है कि उनकी हालत, जबतक उनका होश वापिस नहीं आया, तबतक अपने जहाजों का नियंत्रण करने योग्य नहीं रह गयी थी। मांसाहार और शराब, दोनों के बारे में उत्तम नियम तो यह है कि “हमें खाने-पीने और आमोद-प्रमोद के लिए नहीं जीना चाहिए, बल्कि इसलिए खाना और पीना चाहिए कि हमारे शरीर ईश्वर के मन्दिर बन जायें और हम उनका उपयोग मनुष्य की सेवा में कर सकें।” औषधि के रूप में कभी-कभी शराब की आवश्यकता हो सकती है और मुमकिन है कि जब आदमी मरने के करीब हो तो शराब का घूँट उसकी जिन्दगी को थोड़ा और बढ़ा दे। लेकिन शराब के पक्ष में इससे अधिक और कुछ नहीं कहा जा सकता।

(इंडियाज केस फॉर स्वराज्य, पृ. ४०३)

आपको ऊपर से ठीक दिखाई देने वाली इस दलील के भुलावे में नहीं आना चाहिए कि शराबबन्दी ज़ोर-जबरदस्ती के आधार पर नहीं होनी चाहिए और जो लोग शराब पीना चाहते हैं, उन्हें उसकी सुविधाएँ मिलनी ही चाहिए। राज्य का यह कोई कर्त्तव्य नहीं है कि वह अपनी प्रजा की कुटेवों के लिए अपनी ओर से सुविधाएँ दे । हम वेश्यालयों को अपना व्यापार चलाने के लिए अनुमति-पत्र नहीं देते । इसी तरह हम चोरों को अपनी चोरी की प्रवृत्ति पूरी करने की सुविधाएँ नहीं देते । मैं शराब को चोरी और व्यभिचार, दोनों से ज़्यादा निंद्य मानता हूँ । क्या वह अक्सर इन दोनों बुराइयों की जननी नहीं होतीं ?

(यंग इंडिया, ८-६-१९२१)

शराब की आदत मनुष्य की आत्मा का नाश कर देती है और उसे धीरे-धीरे पशु बना डालती है, जो पत्नी, माँ और बहन में भेद करना भूल जाता है । शराब के नशे में यह भेद भूल जाने वाले लोगों को मैंने खुद देखा है।

(हरिजन, ९-३-१९३६)

शराब और अन्य मादक द्रव्यों से होने वाली हानि कई अंशों में मलेरिया आदि बीमारियों से होने वाली हानि की अपेक्षा असंख्य गुना ज़्यादा है। कारण, बीमारियों से तो केवल शरीर को ही हानि पहुँचती है, जबकि शराब आदि से शरीर और आत्मा, दोनों का नाश हो जाता है।

(यंग इंडिया, ३-३-१९२७)

मैं भारत का ग़रीब होना पसन्द करूँगा, लेकिन मैं यह बरदाश्त नहीं कर सकता कि हज़ारों लोग शराबी हों। अगर भारत में शराबबन्दी जारी करने के लिए लोगों को शिक्षा देना बन्द करना पड़े तो कोई परवाह नहीं; मैं यह कीमत चुकाकर भी शराबखोरी को बन्द करूँगा।

(यंग इंडिया, १५-९-१९२७)

जो राष्ट्र शराब की आदत का शिकार है, कहना चाहिए कि उसके सामने विनाश मुँह बाये खड़ा है। इतिहास में इस बात के कितने ही प्रमाण हैं कि इस बुराई के कारण कई साम्राज्य मिट्टी में मिल गये हैं । प्राचीन भारतीय इतिहास में हम जानते हैं कि वह पराक्रमी जाति, जिसमें श्रीकृष्ण ने जन्म लिया था, इसी बुराई के कारण नष्ट हो गयी। रोम साम्रज्य के पतन का एक सहायक कारण निस्सन्देह यह बुराई ही थी।

(यंग इंडिया, ४-४-१९२९)

यदि मुझे एक घंटे के लिए भारत का डिक्टेटर बना दिया जाये तो मेरा पहला कदम यह होगा कि शराब की दुकानों को बिना मुआवज़ा दिये बन्द करा दिया जाये और कारखानों के मालिकों को अपने मज़दूरों के लिए मनुष्योचित परिस्थितियाँ निर्माण करने तथा उनके हित में

ऐसे उपहार-ग्रृह और मनोरंजन-गृह खोलने के लिए मजबूर किया जाये, जहाँ मज़दूरों को ताज़गी देने वाले निर्दोष पेय और उतने ही निर्दोष मनोरंजन प्राप्त हो सकें।

(यंग इंडिया, २५-६-१९३२)

२२. संतति-नियमन

सन्तति के जन्म को मर्यादित करने की आवश्यकता के बारे में दो मत हो ही नहीं सकते। परन्तु इसका एकमात्र उपाय है आत्म-संयम या ब्रह्मचर्य, जो कि युगों से हमें प्राप्त है । यह रामबाण और सर्वोपरि उपाय है और जो इसका सेवन करते हैं, उन्हें लाभ-ही-लाभ होता है। डॉक्टर लोगों का मानव-जाति पर बड़ा उपकार होगा, यदि वे सन्तति-नियमन के लिए कृत्रिम साधनों की तजवीज करने के बजाय आत्म-संयम के साधन निर्माण करें।

कृत्रिम साधनों की सलाह देना मानो बुराई का हौसला बढ़ाना है। उससे पुरुष और स्त्री दोनो उच्छृंखल हो जाते हैं और इन कृत्रिम साधनों को जो प्रतिष्ठा दी जा रही है, उससे उस संयम के ह्रास की गति बढ़े बिना न रहेगी, जो कि लोकमत के कारण हम पर रहता है। कृत्रिम साधनों के अवलम्बन का कुफल होगा नपुंसकता और क्षीणवीर्यता। यह दवा रोगों से भी ज़्यादा बदतर साबित हुए बिना न रहेगी।

अपने कर्म के फल को भोगने से दुम दबाना दोष है, अनीतिपूर्ण है। जो शख्स ज़रूरत से ज़्यादा खा लेता है, उसके लिए यही अच्छा है कि उसके पेट में दर्द हो और उसे लंघन करना पड़े। ज़बान को काबू में न रख कर अनाप-शनाप खा लेना और फिर बलवर्धक या दूसरी दवाइयाँ खाकर उसके नतीजे से बचना बुरा है। पशु की तरह विषय-भोग में ग़र्क रह कर अपने इस कृत्य के फल से बचना और भी बुरा है। प्रकृति बड़ी कठोर शासक है, वह अपने कानून-भंग का पूरा बदला बिना आगा-पीछा देखे चुकाती है । केवल नैतिक संयम के द्वारा ही हमें नैतिक फल मिल सकता है। संयम के दूसरे तमाम साधन अपने हेतु के ही विनाशक सिद्ध होंगे।

(हिन्दी नवजीवन, १२-३-१९२५)

लोगों पर वन्ध्यीकरण (वह क्रिया जिससे पुरुष के वीर्य में निहित प्रजनन-शक्ति का नाश कर दिया जाता है) का कानून लादने को मैं अमानुषिक मानता हूँ, परन्तु जो व्यक्ति पुराने रोगों के मरीज हों, वे यदि स्वीकार कर लें तो उनका वन्ध्यीकरण वांछनीय होगा। वन्ध्यीकरण एक प्रकार का कृत्रिम साधन है। यद्यपि मैं स्त्रियों के सम्बन्ध में कृत्रिम साधनों के उपयोगों के ख़िलाफ़ हूँ,

फिर भी मैं पुरुष के सम्बन्ध में स्वेच्छा से किये जाने वाले वन्ध्यीकरण के ख़िलाफ नहीं हूँ, क्योंकि पुरुष आक्रामक है।

(अमृतबाज़ार पत्रिका, १२-१-१९३५)

२३. अस्पृश्यता का अभिशाप

आजकल हिन्दू धर्म में जो अस्पृश्यता देखने में आती है, वह उसका एक अमिट कलंक है। मैं यह मानने से इनकार करता हूँ कि वह हमारे समाज में स्मरणातीत काल से चली आयी है। मेरा ख़याल है कि अस्पृश्यता की यह घृणित भावना हम लोगों में तब आयी होगी, जब हम अपने पतन की चरम सीमा पर रहे होंगे और तबसे यह बुराई हमारे साथ लग गयी और आज भी लगी हुई है। मैं मानता हूँ कि यह एक भयंकर अभिशाप है और यह अभिशाप जबतक हमारे साथ रहेगा, तबतक मुझे लगता है कि इस पावन भूमि में हमें जब जो भी तकलीफ़ सहनी पड़े, वह हमारे इस अपराध का, जिसे हम आज भी कर रहे हैं, उचित दण्ड होगी।

(स्पीचेज एण्ड राइटिंग्ज़ ऑफ महात्मा गांधी, पृ० ३५७)

मेरी राय में हिन्दू धर्म में दिखायी पड़ने वाला अस्पृश्यता का वर्तमान रूप ईश्वर और मनुष्य के ख़िलाफ़ किया गया भयंकर अपराध है और इसलिए वह एक ऐसा विष है, जो धीरे-धीरे हिन्दू धर्म के प्राण को ही नि:शेष किये दे रहा है। मेरी राय में शास्त्रों में, यदि हम सब शास्त्रों को मिलाकर पढ़ें, तो इस बुराई का कहीं समर्थन नहीं है। शास्त्रों में एक तरह की हितकारी अस्पृश्यता का विधान ज़रूर है, लेकिन उस तरह की अस्पृश्यता तो स्वच्छता के नियम का ही एक अंग है, वह तो सदा रहेगी। किन्तु भारत में हम आज जैसी अस्पृश्यता देख रहे हैं, वह एक भयंकर चीज़ है और उसके हरएक प्रान्त में, यहाँ तक कि हर एक ज़िले में अलग-अलग कितने ही रूप हैं। उसने अस्पृश्यों और स्पृश्यों, दोनों को नीचे गिराया है। उसने लगभग चार करोड़ मनुष्यों का विकास रोक रखा है। उन्हें जीवन की सामान्य सुविधाएँ भी नहीं दी जातीं। इसलिए इस बुराई को जितनी जल्दी निर्मूल कर दिया जाये, उतना ही हिन्दू धर्म, भारत और शायद समग्र मानव-जाति के लिए वह कल्याणकरी सिद्ध होगा ।

(हरिजन, ११-२-१९३३)

यदि हम भारत की आबादी के पाँचवें हिस्से को स्थायी गुलामी की हालत में रखना चाहते हैं और उन्हें जान-बूझकर राष्ट्रीय संस्कृति के फलों से वंचित रखना चाहते हैं तो स्वराज्य एक

अर्थहीन शब्द-मात्र होगा। आत्मशुद्धि के इस महान आन्दोलन में हम भगवान की मदद की आकांक्षा रखते हैं, लेकिन उसकी प्रजा के सबसे ज़्यादा सुपात्र अंश को हम मानवता के अधिकारों से वंचित रखते हैं । यदि हम स्वयं मानवीय दया से शून्य हैं तो उसके सिंहासन के निकट दूसरों की निष्ठुरता से मुक्ति पाने की याचना नहीं कर सकते।

(यंग इंडिया, २५-५-१९२१)

यदि अस्पृश्यों को अस्पृश्य इसलिए माना जाता है कि वे जानवरों को मारते हैं और मांस, रक्त, हड्डियाँ और मैला आदि छूते हैं, तब तो हरेक नर, और डॉक्टरों को भी अस्पृश्य माना जाना चाहिए, और इसी तरह मुसलमानों, ईसाइयों और तथाकथित ऊँचे वर्गों के उन हिन्दुओं को भी अस्पृश्य माना जाना चाहिए, जो आहार अथवा बलि के लिए जानवरों की हत्या करते हैं। कसाईखाने, शराब की दुकानें, वेश्यालय आदि बस्ती से अलग होते हैं या होने चाहिए, इसलिए अस्पृश्यों को भी समाज से दूर और अलग रखा जाना चाहिए यह दलील अस्पृष्यों के ख़िलाफ़ लोगों के मन में चले आ रहे उत्कट पूर्वाग्रह को ही बताती है। कसाईखाने और ताड़ी अथवा शराब के विक्रेताओं को शेष समाज से अलग नहीं रखा जाता है।

(यंग इंडिया, २९-७-१९२६)

जिस समाज में भंगी का अलग पेशा माना गया है, वहाँ कोई बड़ा दोष पैठ गया है, ऐसा मुझे तो वर्षों से लगता रहा है। इस ज़रूरी और तन्दुरुस्ती बढ़ाने वाले काम को सबसे नीच काम पहले-पहल किसने माना, इसका इतिहास हमारे पास नहीं हैं । जिसने भी माना, उसने हम पर उपकार तो नहीं ही किया। हम सब भंगी हैं, यह भावना हमारे मन में बचपन से ही जम जानी चाहिए और उसका सबसे आसान तरीका यह है कि जो समझ गये हैं, वे जात-मेहनत का आरम्भ पाखाना-सफ़ाई से करें। जो समझ-बूझकर ज्ञानपूर्वक यह करेगा, उसी क्षण से धर्म को निराले ढंग से और सही तरीके से समझने लगेगा।

(मंगल प्रभात, प्रक. ९, पृ० ४३-४-४)

प्रारम्भ में अस्पृश्यता, स्वच्छता के नियमों में से एक थी और भारत के बाहर दुनिया के कई हिस्सों में आज भी उसका यही रूप है। वह नियम यह है कि चीज़ गंदी हो गयी हो या आदमी किसी कारण गंदा हो गया हो तो उसे छूना नहीं चाहिए, लेकिन ज्योंही उसका गंदापन दूर हो जाये या कर दिया जाये, त्योंही उसे छू सकते हैं। इसलिए भंगी का काम करने वाले व्यक्ति, फिर चाहे भंगी हो, जिसे कि उस काम का पैसा मिलता है या माँ, जिसे अपने इस काम का कोई पैसा नहीं मिलता, तबतक गंदे और अस्पृश्य माने जायेंगे, जबतक वे नहा-धोकर इस गंदगी को दूर नहीं कर देते । इसलिए भंगी हमेशा के लिए अस्पृश्य न माना जाये, बल्कि उसे हम अपना भाई मानें । वह समाज की एक ऐसी सेवा करता है, जिसमें उसका शरीर गंदा हो जाता है। हमें चाहिए कि हम उसे इस गंदगी को साफ़ करने का मौका दें, बल्कि उस कार्य में उसकी सहायता करें और फिर उसे समाज के किसी भी सदस्य की तरह स्वीकार करें।

(हरिजन, ११-२-१९३३)

२४. गुण्डों की समस्या

गुंडों को दोष देना ग़लत है। वे तबतक कोई शरारत नहीं कर सकते, जबतक कि हम उनके लिए अनुकूल वातावरण नहीं पैदा कर दें। सन १९२१ में बम्बई में ब्रिटिश युवराज के आगमन-दिवस पर जो कुछ हुआ, वह सब मैंने खुद देखा था। उसका बीज हमने ही बोया था, गुंडों ने तो उसकी फसल काटी। उनके पीछे बल हमारा ही था। हमें प्रतिष्ठित वर्ग को दोषारोपण से बचाने की आदत छोड़ देनी चाहिए। बनियों और ब्राह्मणों को, यदि अहिंसा से नहीं तो हिंसा से सही, अपनी रक्षा करना सीख लेना चाहिए। अगर वे ऐसा ज्हीं करेंगे तो उन्हें अपनी स्त्रियों और अपनी धन-सम्पत्ति को गुंडों के हवाले करना पड़ेगा। गुंडों की असल में उन्हें हिन्दू कहा जाता हो या मुसलमान एक अलग जाति है।

(यंग इंडिया, २९-५-१९२४)

कायरता का इलाज शारीरिक तालीम में नहीं, बल्कि जो भी खतरे आयें, उनका मुकाबला बहादुरी के साथ करने में है। जबतक मध्यम वर्ग के हिन्दू, जो खुद डरपोक होते हैं, ज़्यादा लाड़-प्यार के द्वारा अपने जवान लड़कों-बच्चों को नाजुक बनाना और इस तरह अपना डरपोकपन उनमें भरना जारी रखते हैं, तबतक उनमें ख़तरे को टालने और किसी भी तरह के ख़तरे से बचने की जो वृत्ति पायी जाती है, वह भी जारी रहेगी। इसलिए उन्हें अपने लड़कों को अकेला छोड़ने का साहस करना चाहिए; उन्हें ख़तरे में पड़ने देना चाहिए और ऐसा करते हुए यदि वे मर जाते हैं तो मर जाने देना चाहिए। शरीर से कमज़ोर किसी बौने आदमी में भी शेर का दिल हो सकता है।

(यंग इंडिया, २९-५-१९२४)

जिन लोगों को गुंडा माना जाता है, उनसे हमें जान-पहचान करनी चाहिए। शान्ति का साधक अपने आस-पास समाज के किसी अंग को ऐसे रहने नहीं देगा। सबके साथ मीठा सम्बन्ध बाँधेगा, सबकी सेवा-करेगा। गुंडे लोग आकाश से तो नहीं उतरते। भूत की तरह ज़मीन के पेट में से भी नहीं निकलते। उनकी उत्पत्ति समाज की कुव्यवस्था से होती है । इसलिए समाज उसके लिए ज़िम्मेदार है। गुंडों को समाज का बीमार या एक प्रकार का दूषित अंग समझना चाहिए।

ऐसा मानकर उस बीमारी के कारण ढूँढ़ने चाहिए। कारण हाथ लगने पर बाद में इलाज किया जा सकता है।

(हरिजन सेवक, १४-९-१९४०)

२५. भारतीय गवर्नर

१. हिन्दुस्तानी गवर्नर को चाहिए कि वह खुद पूरे संयम का पालन करे और अपने आसपास संयम का वातावरण खड़ा करे। इसके बिना शराबबन्दी के बारे में सोचा भी नहीं जा सकता।

२. उसे अपने में और अपने आसपास हाथ-कताई और हाथ-बुनाई का वातावरण पैदा करना चाहिए, जो हिन्दुस्तान के करोड़ों गूँगों के साथ उसकी एकता की प्रकट निशानी हो, मेहनत करके रोटी कमाने की ज़रूरत का और संगठित हिंसा के ख़िलाफ़ जिस पर आज का समाज टिका हुआ मालूम होता है संगठित अहिंसा का जीता-जागता प्रतीक हो।

३. अगर गवर्नर को अच्छी तरह काम करना है तो उसे लोगों की निगाहों से बचे हुए, फिर भी सब की पहुँच के लायक, छोटे से मकान में रहना चाहिए। ब्रिटिश गवर्नर स्वभाव से ही ब्रिटिश ताक़त को दिखाता था। उसके लिए और उसके लोगों के लिए सुरक्षित महल बनाया गया था, ऐसा महल जिसमें वह और उसके साम्राज्य को टिकाये रखने वाले उसके सेवक रह सकें। हिन्दुस्तानी गवर्नर राजा-नवाबों और दुनिया के राजदूतों का स्वागत करने के लिए थोड़ी शान-शौकत वाली इमारतें रख सकते हैं। गवर्नर के मेहमान बनने वाले लोगों को उसके व्यक्तित्व और आसपास के वातावरण से 'ईवन अण्टु दिस लास्ट' (सर्वोदय) सबके साथ समान बरताव की सच्ची शिक्षा मिलनी चाहिए। उसके लिए देशी या विदेशी महँगे फर्नीचर की ज़रूरत नहीं। 'सादा जीवन और ऊँचे विचार' उसका आदर्श होना चाहिए। यह आदर्श सिर्फ़ उसके दरवाज़े की ही शोभा न बढ़ाये, बल्कि उसके रोज़ के जीवन में भी दिखाई दे।

४. उसके लिए न तो किसी रूप में छुआछूत हो सकती है और न जाति, धर्म या रंग का भेद। हिन्दुस्तान का नागरिक होने के नाते उसे सारी दुनिया का नागरिक होना चाहिए। हम पढ़ते हैं कि ख़लीफा उमर इसी तरह सादगी से रहते थे, हालाँकि उनके कदमों पर लाखों-करोड़ों की दौलत लोटती रहती थी। उसी तरह पुराने ज़माने में राजा जनक रहते थे। इसी सादगी से ईटन के मुख्याधिकारी, जैसा कि मैंने उन्हें देखा था, अपने भवन में ब्रिटिश द्वीपों के लॉर्ड

और नवाबों के लड़कों के बीच रहा करते थे। तब क्या करोड़ों भूखों के देश हिन्दुस्तान के गवर्नर इतनी सादगी से नहीं रहेंगे ?

५. वह जिस प्रान्त का गवर्नर होगा, उसकी भाषा और हिन्दुस्तानी बोलेगा, जो हिन्दुस्तान की राष्ट्रभाषा है और नागरी या उर्दू लिपि मे लिखी जाती है। वह न तो संस्कृत शब्दों से भरी हुई हिन्दी है और न फारसी शब्दों से लदी हुई उर्दू । हिन्दुस्तानी दरअसल वह भाषा है, जिसे विन्ध्याचल के उत्तर में करोड़ों लोग बोलते हैं।

हिन्दुस्तानी गवर्नर में जो-जो गुण होने चाहिए, उनकी यह पूरी सूची नहीं है। यह तो सिर्फ़ मिसाल के तौर पर दी गयी है।

(हरिजन सेवक, २४-८-१९४७)

२६. अहिंसक अर्थ-व्यवस्था

मैं कहना चाहता हूँ कि हम सब एक तरह से चोर हैं। अगर मैं कोई ऐसी चीज़ लेता और रखता हूँ, जिसकी मुझे अपने किसी तात्कालिक उपयोग के लिए ज़रूरत नहीं है तो मैं उसकी किसी दूसरे से चोरी ही करता हूँ। यह प्रकृति का एक निरपवाद बुनियादी नियम है कि वह रोज़ केवल उतना ही पैदा करती है, जितना हमें चाहिए, और यदि हरएक आदमी जितना उसे चाहिए, उतन ही ले, ज़्यादा न ले, तो दुनिया में गरीबी न रहे और कोई आदमी भूखा न मरे। मैं समाजवादी नहीं हूँ और जिनके पास सम्पत्ति का संचय है, उनसे मैं उसे छीनना नहीं चाहता। लेकिन मैं यह ज़रूर कहता हूँ कि हममें से जो लोग प्रकाश की खोज में प्रयत्नशील हैं, उन्हें व्यक्तिगत तौर पर इस नियम का पालन करना चाहिए। मैं किसी से उसकी सम्पत्ति छीनना नहीं चाहता, क्योंकि वैसा करूँ तो मैं अहिंसा के नियम से च्युत हो जाऊँगा। यदि किसी के पास मेरी अपेक्षा ज़्यादा सम्पत्ति है तो भले रहे । लेकिन यदि मुझे अपना जीवन नियम के अनुसार गढ़ना है तो मैं ऐसी कोई चीज़ अपने पास नहीं रख सकता, जिसकी मुझे ज़रूरत नहीं है। भारत में लाखों लोग ऐसे हैं, जिन्हें दिन में केवल एक ही बार खाकर संतोष कर लेना पड़ता है और उनके उस भोजन में भी सूखी रोटी और चुटकी भर नमक के सिवा और कुछ नहीं होता। हमारे पास जो कुछ भी है उस पर हमें और आपको तबतक कोई अधिकार नहीं है, जबतक इन लोगों के पास पहिनने के लिए कपड़ा और खाने के लिए अन्न नहीं हो जाता। हममें और आपमें ज़्यादा समझ होने की आशा की जाती है। अत: हमें अपनी ज़रूरतों का नियमन करना चाहिए और स्वेच्छापूर्वक अमुक अभाव भी सहना चाहिए, जिससे कि उन ग़रीबों का पालन-पोषण हो सके, उन्हें कपड़ा और अन्न मिल सके।

(स्पीचेज़ एण्ड राइटिंग्ज़ ऑफ महात्मा गांधी, पृ० ३८४)

मुझे स्वीकार करना चाहिए कि मैं अर्थ-विद्या और नीतिविद्या में न सिर्फ़ कोई स्पष्ट भेद नहीं करता, बल्कि भेद ही नहीं करता। जिस अर्थ-विद्या से व्यक्ति या राष्ट्र के नैतिक कल्याण को हानि पहुँचती हो, उसे मैं अनीतिमय और इसलिए पापपूर्ण कहूँगा। उदाहरण के लिए, जो अर्थ-विद्या किसी देश को किसी दूसरे देश का शोषण करने की अनुमति देती है, वह अनैतिक है। जो

मज़दूरों को योग्य मेहनताना नहीं देते और उनके परिश्रम का शोषण करते हैं, उनसे वस्तुएँ खरीदना या उन वस्तुओं का उपयोग करना पापपूर्ण है।

(यंग इंडिया, १३-१०-१९२१)

मेरी राय में भारत की न सिर्फ़ भारत की बल्कि सारी दुनिया की अर्थरचना ऐसी होनी चाहिए कि किसी को भी अन्न और वस्त्र के अभाव की तकलीफ़ न सहनी पड़े । दूसरे शब्दों में, हरएक को इतना काम अवश्य मिल जाना चाहिए कि वह अपने खाने-पहिनने की ज़रूरतें पूरी कर सके, और यह आदर्श निरपवाद रूप से तभी कार्यान्वित किया जा सकता है, जब जीवन की प्राथमिक आवश्यकताओं के उत्पादन के साधन जनता के नियंत्रण में रहें । वे हरएक को बिना किसी बाधा के उसी तरह उपलब्ध होने चाहिए, जिस तरह कि भगवान की दी हुई हवा और पानी हमें उपलब्ध हैं । किसी भी हालत में वे दूसरों के शोषण के लिए चलाये जाने वाले व्यापार का वाहन न बनें । किसी भी देश, राष्ट्र या समुदाय का उन पर एकाधिकार अन्यायपूर्ण होगा। हम आज न केवल अपने इस दुखी देश में, बल्कि दुनिया के दूसरे हिस्सों में भी जो गरीबी देखते हैं, उसका कारण इस सरल सिद्धान्त की उपेक्षा ही है।

(यंग इंडिया, १५-११-१९२८)

जिस तरह सच्चे नीतिधर्म में और अच्छे अर्थशास्त्र में कोई विरोध नहीं होता, उसी तरह सच्चा अर्थशास्त्र कभी भी नीतिधर्म के ऊँचे-से-ऊँचे आदर्श का विरोधी नहीं होता। जो अर्थशास्त्र धन की पूजा करना सिखाता है और बलवानों को निर्बलों का शोषण करके धन का संग्रह करने की सुविधा देत है, उसे शास्त्र का नाम नहीं दिया जा सकता। वह तो एक झूठी चीज़ है, जिससे हमें कोई लाभ नहीं हो सकता। उसे अपनाकर हम मृत्यु का न्यौता देंगे। सच्चा अर्थशास्त्र तो सामाजिक न्याय की हिमायत करता है; वह समान भाव से सबकी भलाई का, जिनमें कमज़ोर भी शामिल हैं, प्रयत्न करता है और सभ्यजनोचित सुन्दर जीवन के लिए अनिवार्य है।

(हरिजन, ९-१०-१९३७)

मैं ऐसी स्थिति लाना चाहता हूँ, जिसमें सबका सामाजिक दरजा समान माना जाये। मज़दूरी करने वाले वर्गों को सैकड़ों वर्षों से सभ्य समाज से अलग रखा गया है और उन्हें नीचा दरजा दिया गया है। उन्हें शूद्र कहा गया है और इस शब्द का यह अर्थ किया गया है कि वे दूसरे वर्गों से नीचे हैं | मैं बुनकर, किसान और शिक्षक के लड़कों में कोई भेद नहीं होने दे सकता।

(हरिजन, १५-१-१९३८)

रचनात्मक काम का यह अंग अहिंसापूर्ण स्वराज्य की मुख्य चाबी है। आर्थिक समानता के लिए काम करने का मतलब है, पूँजी और मज़दूरी के बीच के झगड़ों को हमेशा के लिए मिटा देना। इसका अर्थ यह होता है कि एक ओर से जिन मुट्ठीभर पैसे वाले लोगों के हाथ में राष्ट्र की सम्पत्ति का बड़ा भाग इकट्ठा हो गया है, उनकी सम्पत्ति को कम करना और दूसरी ओर जो करोड़ों लोग अधपेट खाते और नंगे रहते हैं, उनकी सम्पत्ति में वृद्धि करना। जबतक मुट्ठीभर धनवानों और करोड़ों भूखे रहने वालों के बीच बेइन्तहा अन्तर बना रहेगा, तबतक अहिंसा की बुनियाद पर चलने वाली राज्य-व्यवस्था कायम नहीं हो सकती। आज़ाद हिन्दुस्तान में देश के बड़े-से-बड़े धनवानों के हाथ में हुकूमत का जितना हिस्सा रहेगा, उतना ही ग़रीबों के हाथ में भी होगा, और तब नयी दिल्ली के महलों और उनकी बगल में बसी हुई ग़रीब मज़दूर-बस्तियों के टूटे-फूटे झोंपड़ों के बीच जो दर्दनाक फर्क आज नज़र आता है, वह एक दिन को भी नहीं टिकेगा। अगर धनवान लोग अपने धन को और उसके कारण मिलने वाली सत्ता को खुद राजी-खुशी से छोड़कर और सब के कल्याण के लिए, सब के साथ मिलकर बरतने को तैयार न होंगे तो यह तय समझिए कि हमारे देश में हिंसक और खूँख्वार क्रांति हुए बिना न रहेगी। ट्रस्टीशिप या सरपरस्ती के मेरे सिद्धान्त का बहुत मज़ाक उड़ाया गया है, फिर भी मैं उस पर कायम हूँ। यह सच है कि उस तक पहुँचने, यानी उसका पूरा-पूरा अमल करने का काम कठिन है। क्या अहिंसा की भी यही हालत नहीं है ? फिर भी १९२० में हमने यह सीधी चढ़ाई चढ़ने का निश्चय किया था।

(रचनात्मक कार्यक्रम, पृ० ४०-४१)

मेरी सूचना है कि यदि भारत को अपना विकास अहिंसा की दिशा में करना है तो उसे बहुत-सी चीज़ों का विकेन्द्रीकरण करना पड़ेगा। केन्द्रीकरण किया जाये तो फिर उसे कायम रखने

के लिए और उसकी रक्षा के लिए हिंसा-बल अनिवार्य है। जिनमें चोरी करने या लूटने के लिए कुछ है ही नहीं, ऐसे सादे घरों की रक्षा के लिए पुलिस की ज़रूरत नहीं होती। लेकिन धनवानों के महलों के लिए अवश्य बलवान पहरेदार चाहिए, जो डाकुओं से उनकी रक्षा करें । यही बात बड़े-बड़े कारखानों की है। गाँवों को मुख्य मानकर जिस भारत का निर्माण होगा, उसे शहर-प्रधान भारत की अपेक्षा शहर-प्रधान भारत जल, स्थल और वायुसेनाओं से सुसज्जित होगा तो भी विदेशी आक्रमण का कम ख़तरा रहेगा।

(हरिजन, ३०-१२-१९३९)

आज तो बहुत ज़्यादा और इसलिए बहुत भद्दी आर्थिक असमानता है। समाजवाद का आधार आर्थिक समानता है। अन्यायपूर्ण असमानताओं की इस हालत में, जहाँ चंद लोग मालामाल हैं और सामान्य प्रजा को भरपेट खाना भी नसीब नहीं होता, रामराज्य कैसे हो सकता है ?

(हरिजन, १-६-१९४७)

२७. समान वितरण का रास्ता

आर्थिक समानता, अर्थात जगत् के पास समान सम्पत्ति का होना ..... सबके पास इतनी सम्पत्ति का होना कि जिससे वे अपनी कुदरती आवश्यकताएँ पूरी कर सकें। कुदरत ने ही एक आदमी का हाज़मा अगर नाजुक बनाया हो और केवल पाँच ही तोला अन्न खा सके और दूसरों को बीस तोला अन्न खाने की आवश्यकता हो तो दोनों को अपनी पाचन-शक्ति के अनुसार अन्न मिलना चाहिए। सारे समाज की रचना इस आदर्श के आधार पर होनी चाहिए। अहिंसक समाज का दूसरा आदर्श नहीं रखना चाहिए। पूर्ण आदर्श तक हम कभी नहीं पहुँच सकते, मगर उसे नज़र में रख कर हम विधान बनावें और व्यवस्था करें । जिस हद तक हम इस आदर्श को पहुँचा सकेंगे, उस हद तक सुख और सन्तोष प्राप्त करेंगे और उसी हद तक सामाजिक अहिंसा सिद्ध हुई कही जा सकेगी।

इस आर्थिक समानता के धर्म का पालन एक अकेला मनुष्य भी कर सकता है। दूसरों के साथ की उसे आवश्यकता नहीं रहती। अगर एक आदमी इसी धर्म का पालन कर सकता है तो ज़ाहिर है कि एक मण्डल भी कर सकता है। यह कहने की ज़रूरत इसलिए है कि किसी भी धर्म के पालन में, जहाँ तक दूसरे उसका पालन न करें वहाँ तक, हमें रुके रहने की आवश्यकता नहीं । और फिर, ध्येय की आखिरी हद तक न पहुँच सकें, वहाँ तक कुछ भी त्याग न करने की वृत्ति बहुधा लोगों में देखने में आती है। यह भी हमारी गति को रोकती है।

अहिंसा के द्वारा आर्थिक समानता कैसे लाई जा सकती है, इसका विचार करें । पहला कदम यह है कि जिसने इस आदर्श को अपनाया हो वह, अपने जीवन में आवश्यक परिवर्तन करे। हिन्दुस्तान की ग़रीब प्रजा के साथ अपनी तुलना करके अपनी आवश्यकताएँ कम करे। अपनी धन कमाने की शक्ति को नियंत्रण में रखे। जो धन कमावे, उसे ईमानदारी से कमाने का निश्चय करे। सट्टे की वृत्ति हो तो उसका त्याग करे। घर भी अपनी सामान्य आवश्यकताएँ पूरी करने लायक ही रखे और जीवन को हर तरह से संयमी बनावे। अपने जीवन में सम्भव सुधार कर लेने के बाद अपने मिलने-जुलने वालों और अपने पड़ोसियों में समानता के आदर्श का प्रचार करे।

आर्थिक समानता की जड़ में धनिक का ट्रस्टीपण निहित है। इस आदर्श के अनुसार धनिक को अपने पड़ोसी से एक कौड़ी भी ज़्यादा रखने का अधिकार नहीं । तब उसके पास जो ज़्यादा है, क्या उससे छीन लिया जाये ? ऐसा करने के लिए हिंसा का आश्रय लेना पड़ेगा, और हिंसा के द्वारा ऐसा करना सम्भव हो तो भी समाज को उससे कुछ फायदा होने वाला नहीं है, क्योंकि द्रव्य इकट्ठा करने की शक्ति रखने वाले एक आदमी की शक्ति को समाज खो बैठेगा। इसलिए अहिंसक मार्ग यह हुआ कि जितनी मान्य हो सकें, उतनी अपनी आवश्यकताएँ पूरी करने के बाद जो पैसा बाकी बचे, उसका वह प्रजा की ओर से ट्रस्टी बन जाये। अगर वह प्रामाणिकता से संरक्षक बनेगा तो जो पैसा पैदा करेगा, उसका सद्व्यय भी करेगा। जब मनुष्य अपने आपको समाज का सेवक मानेगा, समाज की ख़ातिर धन कमावेगा, समाज के कल्याण के लिए उसे ख़र्च करेगा, तब उसकी कमाई में शुद्धता आयेगी। उसके साहस में भी अहिंसा होगी। इस प्रकार की कार्य-प्रणाली का आयोजन किया जाये तो समाज में बगैर संघर्ष के मूक क्रान्ति पैदा हो सकती है।

इस प्रकार मनुष्य-स्वभाव में परिवर्तन होने का उल्लेख इतिहास में कहीं देखा गया है ? ऐसा प्रश्न हो सकता है। व्यक्तियों में तो ऐसा हुआ ही है। बड़े पैमाने पर समाज में परिवर्तन हुआ है, यह शायद सिद्ध न किया जा सके । इसका अर्थ इतना ही है कि व्यापक अहिंसा का प्रयोग आजतक नहीं किया गया। हम लोगों के हृदय में इस झूठी मान्यता ने घर कर लिया है कि अहिंसा व्यक्तिगत रूप से ही विकसित की जा सकती है और वह व्यक्ति तक ही मर्यादित है। दरअसल बात ऐसी है नहीं । अहिंसा सामाजिक धर्म है, सामाजिक धर्म के तौर पर वह विकसित किया जा सकता है, यह मनवाने का मेरा प्रयत्न और प्रयोग है। यह नयी चीज़ है, इसलिए इसे झूठ समझकर फेंक देने की बात इस युग में तो कोई नहीं कहेगा। यह कठिन है, इसलिए अशक्य है, यह भी इस युग में कोई नहीं कहेगा, क्योंकि बहुत सी चीज़ें अपनी आँखों के सामने नयी-पुरानी होती हमने देखी हैं। मेरी यह मान्यता है कि अहिंसा के क्षेत्र में इससे बहुत ज़्यादा साहस शक्य है और विविध धर्मों के इतिहास इस बात के प्रमाणों से भरे पड़े हैं। समाज में से धर्म को निकाल कर फेंक देने का प्रयत्न बाँझ के घर पुत्र पैदा करने जितना ही निष्फल है; और अगर कहीं सफल हो जाये तो समाज का उसमें नाश है। धर्म के रूपान्तर हो सकते हैं। उसमें निहित प्रत्यक्ष वहम, सड़न और

अपूर्णताएँ दूर हो सकती हैं, हुई हैं और होती रहेंगी। मगर धर्म तो जहाँ तक जगत् है, वहाँ तक चलता ही रहेगा, क्योंकि एक धर्म ही जगत् का आधार है । धर्म की अन्तिम व्याख्या है ईश्वर का कानून। ईश्वर और उसका कानून अलग-अलग चीज़ें नहीं हैं । ईश्वर अर्थात प्रचलित, जीता-जागता कानून। उसका पार कोई नहीं पा सकता। मगर अवतारों ने और पैगम्बरों ने तपस्या करके उसके कानून की कुछ-न-कुछ झाँकी जगत् को कराई है।

किन्तु महाप्रयत्न करने पर भी धनिक संरक्षक न बनें और भूखों मरते हुए करोड़ों को अहिंसा के नाम से और अधिक कुचलते जायें, तब क्या करें ? इस प्रश्न का उत्तर ढूँढ़ने में ही अहिंसक कानून-भंग प्राप्त हुआ। कोई धनवान ग़रीबों के सहयोग के बिना धन नहीं कमा सकता। मनुष्य को अपनी हिंसक शक्ति का भान है, क्योंकि वह उसे लाखों वर्षों से विरासत में मिली हुई है। जब उसे चार पैर की जगह दो पैर और दो हाथ वाले प्राणी का आकार मिला, तब उसमें अहिंसक शक्ति भी आयी । अहिंसक शक्ति का भान भी धीरे-धीरे, किन्तु अचूक रीति से रोज़-रोज़ बढ़ने लगा। वह भान ग़रीबों में प्रसार पा जाये तो वे बलवान बनें और आर्थिक असमानता को, जिसके कि वे शिकार बने हुए हैं, अहिंसक तरीके से दूर करना सीख लें।

(हरिजन सेवक, २४-८-१९४०)

भारत की ज़रूरत यह नहीं हैं कि चंद लोगों के हाथों में बहुत सारी पूँजी इकट्ठी हो जाये। पूँजी का वितरण इस प्रकार होना चाहिए कि वह इस १५०० मील लम्बे और १९०० मील चौड़े विशाल देश को बनाने वाले साढ़े-सात लाख गाँवों को आसानी से उपलब्ध हो सके।

(यंग इंडिया, २३-३-१९२१)

२८. भारत की सांस्कृतिक विरासत

मेरा यह कहना नहीं है कि हम शेष दुनिया से बचकर रहें या अपने आस-पास दीवारे खड़ी कर लें । यह तो मेरे विचार से बड़ी दूर भटक जाना है। लेकिन मैं यह ज़रूर कहता हूँ कि पहले हम अपनी संस्कृति का सम्मान करना सीखें और उसे आत्मसात् करें। दूसरी संस्कृतियों के सम्मान की, उनकी विशेषताओं को समझने और स्वीकार करने की बात उसके बाद ही आ सकती है, उसके पहले कभी नहीं। मेरी यह दृढ़ मान्यता है कि हमारी संस्कृति में जैसी मूल्यवान निधियाँ हैं, वैसी किसी दूसरी संस्कृति में नहीं हैं । हमने उसे पहचाना नहीं है; उसके अध्ययन का तिरस्कार करना, उसके गुणों की कीमत कम करना हमें सिखाया गया है। अपने आचरण में उसका व्यवहार करना तो हमने लगभग छोड़ ही दिया है। आचार के बिना कोरा बौद्धिक ज्ञान उस निर्जीव देह की तरह है, जिसे मसाला भरकर सुरक्षित रखा जाता है। वह शायद देखने में अच्छा लग सकता है, किन्तु उसमें प्रेरणा देने की शक्ति नहीं होती। मेरा धर्म मुझे आदेश देता है कि मैं अपनी संस्कृति को सीखूँ, ग्रहण करूँ और उसके अनुसार चलूँ अन्यथा अपनी संस्कृति से विच्छिन्न होकर हम एक समाज के रूप में मानो आत्महत्या कर लेंगे। किन्तु साथ ही वह मुझे दूसरों की संस्कृतियों का अनादर करने या उन्हें तुच्छ समझने से भी रोकता है।

(यंग इंडिया, १-९-१९२१)

वह उन विविध संस्कृतियों के समन्वय की पोषक है, जो इस देश में सुस्थिर हो गयी हैं, जिन्होंने भारतीय जीवन को प्रभावित किया है और जो खुद भी इस भूमि के वातावरण से प्रभावित हुई हैं । जैसा कि स्वाभाविक है, वह समन्वय स्वदेशी ढंग का होगा, अर्थात उसमें प्रत्येक संस्कृति को अपना उचित स्थान प्राप्त होगा। वह अमरीकी ढंग का नहीं होगा, जिसमें कोई एक प्रमुख संस्कृति बाकी सब को पचा डालती है और जिसका उद्देश्य सुमेल साधना नहीं, बल्कि कृत्रिम और ज़बरदस्ती लादी जाने वाली एकता का निर्माण करना है।

(यंग इंडिया, १७-१-१९२०)

हमारे समय की भारतीय संस्कृति अभी निर्माण की अवस्था में है । हम लोगों में से कई उन सारी संस्कृतियों का सुन्दर सम्मिश्रण रचने का प्रयत्न कर रहे हैं, जो आज आपस में लड़ती दिखाई देती हैं। ऐसी कोई भी संस्कृति, जो सबसे बचकर रहना चाहती हो, जीवित नहीं रह सकती। भारत में आज शुद्ध आर्य संस्कृति जैसी कोई चीज़ नहीं है। आर्य लोग भारत के ही रहने वाले थे या यहाँ बाहर से आये थे और यहाँ के मूल निवासियों ने उनका विरोध किया था, इस सवाल में मुझे ज़्यादा दिलचस्पी नहीं है। जिस बात में मेरी दिलचस्पी है, वह यही कि मेरे अति प्राचीन पूर्वज एक-दूसरे के साथ पूरी आज़ादी से घुल-मिल गये थे और हम उनकी वर्तमान सन्तान, उस मेल का ही परिणाम हैं। अपनी जन्मभूमि का और इस पृथ्वी माता का, जो हमारा पोषण करती है, हम कोई हित कर रहे हैं या उस पर बोझरूप हैं, यह तो भविष्य ही बतायेगा।

(हरिजन, ९-५-१९३६)

२९. गांधीजी का आख़िरी वसीयतनामा

(कांग्रेस के नये विधान का नीचे दिया जा रहा मसविदा गांधीजी ने २९ जनवरी, १९४८ को अपनी मृत्यु के एक दिन पहले ही बनाया था। यह उनका अन्तिम लेख था। इसलिए इसे उनका आख़िरी वसीयतनामा कहा जा सकता है ।)

देश का बँटवारा होते हुए भी, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा मुहैया किये गए साधनों के ज़रिये हिन्दुस्तान को आज़ादी मिल जाने के कारण मौजूदा स्वरूप वाली कांग्रेस का काम अब ख़त्म हुआ, यानी प्रचार के वाहन और धारासभा की प्रवृत्ति चलाने वाले तंत्र के नाते उसकी उपयोगिता अब समाप्त हो गयी है। शहरों और कस्बों से भिन्न उसके सात लाख गाँवों की दृष्टि से हिन्दुस्तान की सामाजिक, नैतिक और आर्थिक आज़ादी हासिल करना अभी बाकी है। लोकशाही के मकसद की तरफ हिन्दुस्तान की प्रगति के दरमियान फौजी सत्ता पर मुल्की सत्ता को प्रधानता देने की लड़ाई अनिवार्य है । कांग्रेस को हमें राजनैतिक पार्टियों की साम्प्रदायिक संस्थाओं के साथ गन्दी होड़ से बचाना चाहिए। इस और ऐसे ही दूसरे कारणों से अखिल भारत कांग्रेस-कमेटी नीचे दिये हुए नियमों के मुताबिक अपनी मौजूदा संस्था को तोड़ने और लोक-सेवक-संघ के रूप में प्रकट होने का निश्चय करे। ज़रूरत के मुताबिक इन नियमों में फेरफार करने का इस संघ को अधिकार रहेगा।

गाँववाले या गाँववालों के जैसी मनोवृत्ति वाले पाँच वयस्क पुरुषों या स्त्रियों की बनी हुई हरएक पंचायत एक इकाई बनेगी।

पास-पास की ऐसी हर दो पंचायतों की, उन्हीं में से चुने हुए एक नेता की रहनुमाई में, एक काम करने वाली पार्टी बनेगी।

जब ऐसी १० पंचायतें बन जायें, तब पहले दरजे के पचास नेता अपने में से दूसरे दरजे का एक नेता चुनें और इस तरह पहले दरजे का नेता दूसरे दरजे के नेता के मातहत काम करे । दो सौ पंचायतों के ऐसे जोड़ कायम करना तबतक जारी रखा जाये, जबतक कि वे पूरे हिन्दुस्तान को न ढँक लें। और बाद में कायम की गयी पंचायतों का हरएक समूह पहले की तरह दूसरे दरजे का नेता चुनता जाये। दूसरे दरजे के नेता सारे हिन्दुस्तान के लिए सम्मिलित रीति से काम करें

और अपने-अपने प्रदेशों में अलग-अलग काम करें। जब ज़रूरत महसूस हो तब दूसरे दरजे के नेता अपने में से एक मुखिया चुनें और वह मुखिया चुनने वाले चाहें, तबतक सब समूहों को व्यवस्थित करके उनकी रहनुमाई करें।

(प्रान्तों या ज़िलों की अन्तिम रचना अभी तय न होने से सेवकों के इस समूह को प्रान्तीय या ज़िला समितियों मे बाँटने की कोशिश नहीं की गयी है। और, किसी भी वक़्त बनाये हुए समूह या समूहों को सारे हिन्दुस्तान में काम करने का अधिकार रहेगा। यह याद रखा जाये कि सेवकों के इस समुदाय को अधिकार या सत्ता अपने उन स्वामियों से यानी सारे हिन्दुस्तान की प्रजा से मिलती है, जिसकी उन्होंने अपनी इच्छा से और होशियारी से सेवा की है ।)

१. हरएक सेवक अपने हाथ-कते सूत की या चरखा संघ द्वारा प्रमाणित खादी हमेशा पहनने वाला और नशीली चीज़ों से दूर रहने वाला होना चाहिए। अगर वह हिन्दू है तो उसे अपने में से और अपने परिवार में से हर किस्म की छुआछूत दूर करनी चाहिए और जातियों के बीच एकता के, सब धर्मों के प्रति समभाव के और जाति, धर्म या स्त्री-पुरुण के किसी भेदभाव के बिना सबके लिए समान अवसर और समान दरजे के आदर्श में विश्वास रखने वाला होना चाहिए।

२. अपने कार्यक्षेत्र में उसे हरएक गाँववालों के निजी संसर्ग में रहना चाहिए।

३. गाँववालों में से वह कार्यकर्त्ता चुनेगा और उन्हें तालीम देगा। इन सब का वह रजिस्टर रखेगा।

४. वह अपने रोज़ाना के काम का रेकार्ड रखेगा।

५. वह गाँवों को इस तरह संगठित करेगा कि वे अपनी खेती और गृह-उद्योगों द्वारा पूर्ण और स्वावलम्बी बनें ।

६. गाँववालों को वह सफ़ाई और तन्दुरुस्ती की तालीम देगा और उनकी बीमारी व रोगों को रोकने के लिए सारे उपाय काम में लायेगा।

७. हिन्दुस्तानी तालीमी संघ की नीति के मुताबिक नयी तालीम के आधार पर वह गाँववालों की, पैदा होने से मरने तक की, सारी शिक्षा का प्रबंध करेगा ।

८. जिनके नाम मतदताओं की सरकारी यादी में न आ पाये हों, उनके नाम व उसमें दर्ज करायेगा।

९. जिन्होंने मत देने के लिए ज़रूरी योग्यता हासिल न की हो, उन्हें वह योग्यता हासिल करने के लिए प्रोत्साहन देगा।

१०. ऊपर बताये हुए और समय-समय पर बढ़ाये हुए उद्देश्यों को पूरा करने के लिए, योग्य कर्त्तव्य पालन करने की दृष्टि से, संघ के द्वारा तैयार किये गए नियमों के अनुसार वह स्वयं तालीम लेगा और योग्य बनेगा।

संघ नीचे की स्वाधीन संस्थाओं को मान्यता देगा:

१. अखिल भारत चरखा-संघ

२. अखिल भारत ग्रामोद्योग-संघ

३. हिन्दुस्तानी तालीमी-संघ

४. हरिजन-सेवक-संघ

५. गो-सेवा-संघ

संघ अपना मकसद पूरा करने के लिए गाँववालों से और दूसरों से चंदा लेगा। ग़रीब लोगों का पैसा इकट्ठा करने पर ख़ास ज़ोर दिया जायेगा।

(हरिजन सेवक, २२-२-१९४८)

अहिंसा कोई स्थूल वस्तु नहीं है; जो आज हमारी दृष्टी के सामने है । किसी को न मारना इतना तो है ही; कुविचार मात्र हिंसा है। उतावली हिंसा है । द्वेष हिंसा है । किसी का बुरा चाहना हिंसा है । जगत् के लिए जो आवश्यक वस्तु है; उस पर कब्जा रखना भी हिंसा है।

- मो. क. गांधी